रीढ़ की हड्डी

[हिन्दी के आठ विशेष एकांकी]

सम्पादक

विष्णु प्रभाकर

१९५२

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार . १९५२
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
वेदव्रत विद्यालङ्कार
न्यू इंडिया प्रेस
नई दिल्ली

विषय-सूची

भूमिका

आज के युग मे एकांकी की मांग जिस गति से बढ रही है वह उसके भविष्य के लिये शुभ-लक्षण माना जा सकता है। केवल पढ़ने के लिये ही नही, खेलने के लिये भी एकांकी का प्रसार बढ रहा है और इस प्रसार के कारण हिन्दी रंगमंच के नवनिर्माण की आवाज़ भी उठ रही है। स्कूल और कालेज की सीमित परिधि से निकल कर एकांकी देहात के मुक्त प्रांगण मे पहुँच गया है। बिहार के श्री जगदीशचन्द्र माथुर उधर के देहातों मे लोक-रगमच तैयार कर रहे है। उन्होने कुछ घुमन्तू नाट्य-मंडलियो की स्थापना भी की है। रेडियो ने एकांकी के प्रसार को गति दी है।

एकांकी का इतिहास पुराना न होकर भी नया नहीं है। यद्यपि बीस वर्ष पहले आधुनिक एकाकी को हिन्दी मे कोई नही जानता था तो भी उस काल मे लिखे जानेवाले प्रहसनो को एकांकी न सही इनका पूर्वज तो माना ही जा सकता है। यही नही इस परम्परा को बडी सरलता से सस्कृत के नाटक साहित्य तक ले जाया जा सकता है और 'गोष्ठी', 'काव्य', 'अंक' आदि को एकांकी के विभिन्न रूप स्वीकार करने मे किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। महाकवि भास के 'ऊरुभग' और नीलकठ के 'कल्याण सौगधिक' से सभी परिचित है।

लेकिन भारतेन्दु-काल मे एकांकी के नाम पर जो-कुछ सामग्री मिलती है उसमे आधुनिक एकांकी के तत्वों का अभाव है। उसकी चर्चा करने से पूर्व उस काल के सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पर एक विहगम दृष्टि डाल लेना उचित होगा।

सस्कृत के नाटक साहित्य के बहुत समृद्ध होने पर भी हिन्दी ने उससे लाभ नहीं उठाया। इसके कई कारण थे। एक तो नाटक साहित्य

के पनपने के लिये जिस शान्ति और उत्साह की आवश्यकता होती है, लडाई-झगडो के कारण उसका यहाँ अभाव था। दूसरे हिन्दी मे गद्य का विकास बहुत देर से हुआ। तीसरा कारण भी कम महत्व-पूर्ण नही है। मुसलमानो मे मूर्ति-पूजा और अनुकरण का निषेध है। इसलिये उनसे सम्पर्क होने पर इस कला को कोई प्रोत्साहन नही मिला। इन सब कारणों से भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र से पहले हिन्दी मे नाटको का प्राय: अभाव ही है। जो नाटक मिलते हैं उनमे अधिकतर अनुवाद हैं।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। उन्होंने जहां युग पर अपना प्रभाव डाला वहाँ युग की नई प्रवृत्तियो से पूरा-पूरा लाभ उठाया। उनके काल तक भारत अंग्रेजो के सम्पर्क मे आ चुका था और वह अग्रेजी नाटक से अपरिचित नही रहा था। बंगाल पर तो उनकी छाप पूरे तौर पर पड चुकी थी। भारतेन्दु अग्रेजी, बगला, संस्कृत तीनो भाषाए जानते थे, इसलिए उनके नाटकों मे जहाँ प्राचीनता है वहां नवयुग का प्रभाव भी है। शृंगार, हास्य और कौतुक के साथ समाज-सुधार और देशभक्ति का आदर्श भी है।

इस काल के नाट्य-साहित्य मे कई मौलिक परिवर्तन हुए। पहले नाटकों मे जो प्रस्तावना आदि रहती थी वह अब समाप्त हो चली। नाटककार पौराणिक विषयो को छोडकर सामाजिक विषयो पर नाटक लिखने लगे। ऐतिहासिक नाटको की नीव भी इसी काल मे पडी। गद्य का प्रयोग बढ गया और हास्य तथा व्यग्य की मात्रा भी अधिक रही।

भारतेन्दु के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी के काल मे अनुवादो की भरमार रही। कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गये, परन्तु उनमे अधिकतर पेशेवर नाटक कम्पनियो के लिये लिखे गये थे। इन नाटको मे साहित्य के स्थान पर लोकरुचि का ध्यान रखा जाता था। इस काल का रगमंच भी बडा अस्वाभाविक था। इसलिए इन नाटको का साहित्य मे कोई स्थान नही है। इस युग की मुख्य देन केवल यही है कि नाटको मे

खड़ी बोली गद्य का प्रयोग बढ़ा और रंगमंच पर हिन्दी का स्थान [illegible] गया।

नाटक साहित्य का प्रारम्भ जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है उसी प्रकार उसका वास्तविक विकास बा० जयशंकरप्रसाद के उदय के साथ होता है। उनके इस क्षेत्र में आने पर जो नई प्रवृत्तियाँ विकसित हुई वे महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन नाटकों मे मंगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार और भरत वाक्य आदि जो शास्त्रीय नियम रहते थे वे अब समाप्त हो गए, तथा हत्या और युद्ध आदि के दृश्य जो नही दिखाये जाते थे उनका बे रोक-टोक प्रयोग होने लगा। ब्रजभाषा प्रायः समाप्त हो गई और गद्य की प्रचुरता बढ़ गई। धार्मिक के स्थान पर सामाजिक तथा पौराणिक के स्थान पर ऐतिहासिक कथावस्तु को प्रधानता मिलने लगी। प्रसादजी के प्रायः सभी नाटक ऐतिहासिक हैं। दैवी घटनाओं के लोप हो जाने पर मनुष्य का महत्त्व भी बढ गया। सभी जाति के पात्रों का चित्रण होने लगा। प्राचीन नाटकों मे आदर्शवाद के कारण उनके पात्रों मे प्रायः अन्तर्द्वन्द्व नही होता था। सघर्ष तो दूर की बात है, पर प्रसाद के युग मे आदर्श के प्रति पुरानी भक्ति नही रही। समाज मे सघर्ष बढ गया और उसीके साथ नाटकों पर भी उसकी छाप पडने लगी। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। इस प्रवृत्ति के कारण चरित्र के विकास को भी स्थान मिला। नाटकों मे अन्तर्द्वन्द्व बढ गया। पुराने नाटकों मे भावों की गम्भीरता नही थी, बल्कि शब्दों का तूफान अधिक था। प्रसाद ने अन्तर्वेदना को स्थान देकर उस तूफान को शान्त किया।

इस प्रकार प्रसादजी के आते-आते विकास की एक मंजिल पूरी हो जाती है। इन्हीं के साथ-साथ हम नवयुग मे प्रवेश करते हैं। नवयुग पर बर्नार्ड शा और इब्सन के नाटकों का प्रभाव है। प्रसाद के नाटकों से वे बहुत आगे बढ गए हैं।

आज के नाटको मे प्रतिदिन जीवन से सम्बंध रखने वाली समस्याएं है। पात्र भी राजा-रानी या विशिष्ट व्यक्ति न होकर समाज के वे दूसरे लोग हैं जिन्हे हम कल तक छोटा समझते रहे थे। आज का नाटककार अतीत की ओर नही देखता भविष्य की ओर देखता है। वर्तमान युग मे फुरसत कम है और दौड-धूप अधिक है। नाटक पर इस बात का पूरा प्रभाव पडा है। रामायण-जैसे महाकाव्यो का युग समाप्त हो चुका है। अब तो मुक्तक यानी फुटकर कविताओ की मांग है। पैदल, बैलगाडी, घोडा-गाडी, भाप का इंजन, मोटर, रेल और अन्त मे हवाई जहाज़! मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुंच गया। आज वह बहुत थोडे समय मे और बहुत थोडे शब्दो मे बहुत कुछ जान लेना चाहता है। इसलिए उपन्यास के स्थान पर आज कहानी प्रिय है, बडे नाटक छोटे होते जा रहे है। विज्ञान की उन्नति के कारण सिनेमा ने सारी रात के ड्रामे को अब दो घंटे के चलचित्र मे पलट दिया है। इसलिए आज का नाटक अधिक सक्षिप्त और अधिक वास्तविक होता जा रहा है। इसलिए रगमंच के सकेत पूरे ब्यौरे के साथ दिये जाते हैं।

व्यस्त जीवन और संक्षिप्तता से प्रेम के कारण ही इस युग मे एकांकी की मॉग बढ गई है। एकांकी का नाटक से प्रायः वही सम्बन्ध है जो कहानी का उपन्यास से है। जैसे कि हम शुरु मे कह चुके हैं, आधुनिक एकांकी का जन्म कोई बीस साल से अधिक पुराना नही है पर किसी-न-किसी रूप मे वह संस्कृत काल से चला आता है। भारतेन्दु युग मे भी कुछ एकांकी लिखे गये। स्वयं भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ आदि इस युग के कुछ एकांकीकार हैं। इनके एकांकियो मे केवल सम्वाद ही प्रमुख हैं दूसरे नाट्य-तत्वो का प्रायः अभाव है। इसलिये कुछ लोग प्रसाद के 'एक घूंट' को वास्तविक एकांकी मानते है। इस काल मे इस कला पर पश्चिम का प्रभाव बंगला से होकर पडा है। प्रसाद के 'एक घूंट' के

सम्भाषणों पर रवि ठाकुर का प्रभाव है। उसमें कायगात का भी अभाव है। इसलिये अब आलोचक इस एकांकी को आधुनिक एकांकी का प्रथम नाटक मानने मे संकोच करते हैं। सन् १९३५ मे हिन्दी के नवयुवक कलाकार श्री भुवनेश्वर के एकांकी सामने आये। उनमे कला और कथावस्तु सब दृष्टि से नवीनता थी पर वे पश्चिम से अत्यधिक प्रभावित थे। इससे भी हिन्दी एकांकी को ठीक दिशा नही मिली। सन् १९३८ मे 'हंस' का एकांकी नाटक अंक निकला जिसने इस कला को एक निश्चित दिशा प्रदान की। इसी समय एकांकी नाटक को एक और दिशा से प्रोत्साहन मिला। रेडियो के प्रचार और प्रसार के कारण छोटे नाटको की माग वढी।

रेडियो नाटक और रंगमंच के नाटक अथवा एकांकी में निश्चित रूप से अन्तर है। रेडियो नाटक केवल ध्वनि पर अवलम्बित है। रंगमच पर अभिनेता शरीर के हाव-भाव द्वारा दर्शक पर प्रभाव डाल सकता है; पर रेडियो के अभिनेता के पास तो केवल शब्द ही है। एक ग्रामीण व्यक्ति ने रेडियो नाटक को अन्धो का सिनेमा कहा था। ये शब्द सुनने में भले ही बुरे या अटपटे लगें पर अर्थ उसके बहुत सही हैं। रेडियो नाटक एकांकी भी हो सकता है और छोटा नाटक भी। कुछ भी हो इसके बाद तो एकांकी की प्रगति वडी सन्तोपजनक रही। उसके रूप मे स्थिरता आई और नये-नये प्रयोगो ने उसे गति दी। आज के एकांकीकारों मे सर्वश्री रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, गणेशप्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविन्ददास, अज्ञेय, लक्ष्मीनारायण अवस्थी, चन्द्रकिशोर जैन, प्रभाकर माचवे, हरिश्चन्द्र खन्ना, सत्येन्द्र शरत आदि कुछ प्रमुख नये-पुराने लेखको के नाम लिये जा सकते है।

एकांकी के क्षेत्र मे शैली और वस्तु की दृष्टि में इधर नये-नये प्रयोग वरावर हो रहे हैं। कुछ एकांकी ऐसे लिखे जाते है जिनमे केवल सम्वाद होता

है। ये केवल रेडियो पर ही खेले जा सकते है। कुछ नाटक केवल पढने के लिये लिखे जाते हैं। इधर कुछ गीति-नाट्य भी लिखे गये हैं। श्री-सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्री उदयशंकर भट्ट ने कई सुन्दर गीति-नाट्य लिखे है और रेडियो ने उन्हें प्रसारित किया है। कुछ गद्य सम्भाषण के साथ इप्टा[1] ने ऐसे नाटक रंगमंच पर खेले भी है। यद्यपि पिछले दिनो नाटक मे सगीत का स्थान कम होता जा रहा था पर इधर ऐसे गीति और नृत्य नाटको की माग बढ़ रही है। संस्कृति की पुकार जैसे-जैसे बढती जाएगी वैसे-वैसे नृत्य और गीति नाटको का प्रसार भी बढता जाएगा।

इसके अतिरिक्त रेडियो तथा सिनेमा का प्रचार व प्रसार भी निरन्तर बढ़ता जाएगा और उसका प्रभाव दृश्य नाटक पर पडे बिना न रहेगा। दृश्य नाटक ही नाटक का सबसे महत्वपूर्ण प्रकार है। यद्यपि आज हिदी मे रगमंच का प्राय. अभाव है पर इपटा, पृथ्वीराज थियेटर तथा अनेक कालेज और क्लबो के रगमंच की प्रगति इस बात का संकेत करती है कि भविष्य मे हिदी-रंगमच नयी भावनाओ को लेकर आगे बढेगा। उसमे दर्शक सुनता ही नही देखता भी है। देखता तो सिनेमा मे भा है, पर सिनेमा मे व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है।

रेडियो नाटक के अतिरिक्त आज कल हिन्दी मे प्रतीकात्मक नाटक, प्रहसन, फैंटेसी और मोनोड्रामा की चर्चा भी है, परन्तु अभी इस दिशा मे कोई विशेष उल्लेखनीय काम नही हुआ है। मोनोड्रामा केवल मात्र सेठ गोविन्ददास ने लिखा है। भाव-नाट्य की परम्परा पुरानी होने पर भी आज केवल श्री गोविन्दवल्लभ पंत तथा श्री उदयशंकर भट्ट ने ही एक दो नाटक लिखे है।

नाट्य विधान की दृष्टि से एकांकी और कहानी मे कोई अन्तर नही

---

१ इण्डियन पीपल्ज थियेटर।

है। उद्घाटन, विकास, चरमोत्कर्ष और अन्त—ये चारो भाग एकांकी के लिये भी माने जाते हैं, परन्तु हमारे विचार मे किसी भी कला को नियमो मे नही जकड़ा जा सकता है। हां, आधुनिक एकांकी का सबसे बड़ा गुण सकलन-त्रय है। सकलन-त्रय का अर्थ है—समय, स्थान और कार्य-गति की एकता। आज का एकाकी उतने ही समय मे खेला जा सकता है जितने मे उसकी घटना वास्तविक जीवन मे घटती है। घटनाओ के समय मे भी अन्तर नही होता और न स्थान-परिवर्तन होता है अर्थात् घटना एक ही स्थान और एक ही समय पर घटनी चाहिये। यह नहीं कि एक दृश्य आज का हो और दूसरा एक वर्ष बाद का, एक का स्थान दिल्ली हो और दूसरे का कलकत्ता।

श्री अश्क के शब्दो मे—"सफल एकांकी मे रंग-संकेत स्पष्ट, कार्य-गति क्षिप्र, अभिनय सुन्दर, सम्वाद चुस्त और चुटीले, चरित्र-चित्रण यथार्थ तथा मनोवैज्ञानिक और अवसर के अनुसार प्रकाश अथवा छाया का प्रयोग होना चाहिये।

प्राचीन और नवीन एकांकी मे जो अन्तर है उनमे कुछ ये हैं—

(१) आज के एकांकी मे जटिल नियमो की भरमार नही है। विज्ञान की प्रगति और खुली हवा मे खेले जाने वाले नाटको के प्रचार के कारण आज के एकांकी मे रगमच के विस्तृत संकेत दिये जाते हैं।

(२) आज के एकाकी मे प्रस्तावना, मगलाचरण और नान्दी की आवश्यकता नही है।

(३) आज के एकांकी में पात्रो व रसो का कोई बन्धन नही है। देवता और अलौकिक घटनाओ का इसमें कोई स्थान नहीं है।

(४) आज का एकाकी जीवन के अधिक समीप है। यथार्थता, मनोवैज्ञानिक सत्य और अन्तर्द्वन्द्व का उसमे पूरा समावेश है।

(५) आज का एकाकी मात्र राजा-महाराजाओ के मनोरंजन का साधन नही है। वह जनता का मनोरंजन करता है और मनोरंजन ही नही

वह उसके जीवन के विकसित होने मे भी पूरी सहायता करता है। व्यक्ति से अधिक वह समाज का है । खोखली विलासिता से अब उसका कोई सम्बन्ध नही है।

(६) आज का एकांकी संसार को सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण समस्या-मूलक अधिक होता जा रहा है। लेकिन वादो की विभिन्नता और अस्थिरता के कारण वह प्रचारात्मक भी हो चला है। यह अस्वस्थता का लक्षण है, परन्तु साथ ही हमे यह विश्वास भी होता है कि जीवन के निकटतर होने के कारण वह साहित्य को नयी दृष्टि दे सकेगा।

इस प्रकार आज का एकांकी साहित्य समूचे जन-जीवन को समेटता हुआ तीव्र गति से आगे बढ रहा है। रेडियो, सिनेमा और रगमंच तीनो क्षेत्रो में उसकी प्रगति अक्षुण्ण है।

नाट्य-कला सबसे बडी सामाजिक कला है। इसलिये इसका भविष्य किसी भी अवस्था मे हो उज्ज्वल है और यह भी निश्चित है कि समाज मे जो भी परिवर्तन होगे उनकी छाप सबसे पहले इस कला पर पडेगी।

जहा तक प्रस्तुत एकांकी-संग्रह का सम्बन्ध है इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि संग्रह सुन्दर एकांकियो के साथ-साथ हिंदी के प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि एकांकीकारो का प्रतिनिधित्व भी करे। विषय, शैली और विधान की दृष्टि से भी इसको प्रतिनिधि-सग्रह बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस सग्रह की एक और विशेषता यह है कि इसके सभी एकांकी सकलन-त्रय की कसौटी पर खरे उतरने वाले एकांकी है।

हम उन सभी नाटककारो के प्रति आभार प्रकट करते है जिन्होने कृपा कर अपनी अमूल्य रचनाओ को इस संग्रह मे सम्मिलित करने की अनुमति दी। उनके सहयोग के बिना यह सग्रह इतना सुन्दर नही बन सकता था।

३३४६ पापल महादेव,
पो० बा० ११६७, दिल्ली

—विष्णु प्रभाकर

रीढ़ की हड्डी

डा० रामकुमार वर्मा

नाटककार होने के साथ-साथ कवि और आलोचक भी है। हिन्दी-एकाकी के जन्मदाता माने जाते है। सर्वप्रथम नाटक 'बादल की मृत्यु' है जिसे सन् १९३० मे लिखा था। आप मध्य-प्रदेश के निवासी हैं। सागर मे १५ नवम्बर १९०५ को आपका जन्म हुआ था, पर शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय मे हुई। वही आप प्राध्यापक भी है। आरम्भ से ही उस विश्वविद्यालय के रगमंच से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी कारण आपके नाटक अभिनय-कला की दृष्टि से सफल है।

इधर जबसे रेडियो का प्रचार और प्रसार हुआ है तबसे आपके अनेक ध्वनि-नाटक प्रसारित हो चुके है। इस कला मे भी पर्याप्त सफलता मिली है।

आप सर्वप्रथम कवि है। इसलिए आपके नाटको मे कवित्व की प्रधानता है। आप सौन्दर्य के शिल्पी और मनोभावो के सूक्ष्म विश्लेषण-कर्त्ता हैं। ऐतिहासिक और सामाजिक दोनो प्रकार के नाटक लिखते है। सामाजिक नाटकों मे हास्य की हल्की-हल्की छाया बराबर रहती है। भाषा सरल, भावप्रधान और मजी हुई है। सम्वाद चुस्त है।

प्रतिशोध

●

पात्र-परिचय

भारवि संस्कृत के महाकवि

श्रीधर : संस्कृत के महापण्डित, भारवि के पिता

सुशीला · भारवि की माता

भारती एक विदुषी

आभा : सेविका

(श्रीधर ग्रंथ देखते हुए श्लोक पढते हैं)

श्रीधर —ॐ ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध. कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थात्—जगत् में जो कुछ स्थावर और जगम है, वह सव ईश्वर के द्वारा आच्छादित है। तात्पर्य, ससार के क्रोड़ में भगवान की ही सत्ता है। तू नामरूपात्मक वाहरी विकारो के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है, उसका स्वाद तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ..(सुशीला की ओर) तुम ध्यान से नहीं सुन रही हो ?

सुशीला—(ध्यान-मग्नता से चौंककर) अँह, सुन तो रही हू, किन्तु भारवि.

श्रीधर —(बीच ही में) भारवि ! फिर भारवि ! भारवि के पीछे वेद छोड दो, उपनिषद् छोड दो, शास्त्र छोड़ दो। भारवि ही ससार में एक पुत्र है और तुम्हीं ससार में एक माता हो।

सुशीला—यह मैं नहीं कहती, किन्तु भारवि अभी तक नही आया !

श्रीधर —नही आया, तो आ जाएगा ! इस धारा नगरी में उसके आकर्षण के वहुत से केन्द्र हैं। कही बैठ गया होगा। कोई कविता का भाव खोजने लगा होगा। महाकवि जो वनता है। और तुम उसकी माता हो। तुम भी कविता का भाव खोजो न ! तुम तो अधिक अच्छा भाव खोज सकोगी। अच्छा, देखो ! यही भाव देखो, ईशावास्योपनिषद् के पहले ही श्लोक में 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'...अर्थात् तू नामरूपात्मक वाहरी विकारो के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है—

सुशीला—ईश्वर की सत्ता तो है; किन्तु भारवि नही आया ?

श्रीधर —नही आया तो जायेगा कहाँ ! शिव शिव ! फिर भारवि ! क्या कहू सुशीला, भारवि तो उपनिषद् से भी बढकर हो गया है कि उसके चिंतन में उपनिषद् का भी चिंतन समाप्त हो गया। कोई चिन्ता नही। मै कहता हू, भारवि है कवि और कवि समय पर शासन करता है। समय उसपर शासन नहीं करता। दिवस और रात्रि के उज्ज्वल और श्याम रगवाले समय के जो नेत्र है उनमें कवि दृष्टि बनकर विचरण करता हैं। वह घर और बाहर में अन्तर क्या समझता है ? वह समस्त ससार को अपने में देखता है और अपने में समस्त ससार को, कवि ससार मे रहकर भी ससार से परे हो जाता है।

सुशीला—तो क्या भारवि कवि बनकर मेरा पुत्र नही रहा ?

श्रीधर —पुत्र तो है ही, किन्तु वह संसार का जनक भी है। जनक। अपनी कल्पना से वह न जाने कितने ससार के समूहो का निर्माण कर सकता है।

सुशीला—तो क्या कल्पना से वह अपनी माता का भी निर्माण कर सकता है ? और वह करे भी तो कर ले, किन्तु ससार में उसकी एक ही माता रहेगी, एक ही जननी रहेगी और वह मै हू, मै !

श्रीधर —हाँ, माता तो तुम्ही हो। किसी दिन शास्त्रार्थ करके देख लेना।

सुशीला—शास्त्रार्थ के नियमो मे माता का हृदय नही बाधा जा सकता। शास्त्र मे सिद्धात है, प्रेरणा नही है। शास्त्र मे माता की प्रशस्ति है, किन्तु माता के हृदय का स्पन्दन नही है। शास्त्र तो तत्व की बात कहता है, उसे आँसुओ की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव नही है।

श्रीधर —माँ के आँसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव पुत्र करता है ?

सुशीला—अवश्य करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती ही है।

श्रीधर —व्याकुल होगा, तो देख लूँगा उसकी व्याकुलता। तुम इस व्याकुलता से ऊपर उठो। शास्त्र का चिंतन करो।

सुशीला—आप भारवि के पिता है तो शास्त्र का चिंतन कर सकते है। मै कैसे करूँ ? आज दूसरा दिन है और वह नही आया। और दिनो तो वह जल्दी आ जाया करता था। आज दूसरी रात्रि का दूसरा प्रहर है और वह अभी तक नही आया। न जाने कहाँ होगा। उसने भोजन भी किया होगा या नहीं ?

श्रीधर —सुशीला, तुम व्यर्थ ही चिन्ता करती हो। भारवि कोई शिशु तो है नही, जिसे भोजन कराने के लिए माता के दुलार की आवश्यकता है। वह किसी गोष्ठी में बैठकर कविता का आनन्द ले रहा होगा, यहाँ माता चिन्तित हो रही है !

सुशीला—आप इतने निष्ठुर कैसे है ? क्या शास्त्र का चिंतन और पाण्डित्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है ? भूख-प्यास में भी कही कवि-गोष्ठी से रुचि हो सकती है ? मेरा भारवि कही अन्यत्र भोजन नही करता।

श्रीधर —भारवि भारवि भारवि ! न तुम शात रहोगी, न मुझे शात होने दोगी। भारवि मूर्ख है और तुम

सुशीला—(बीच ही मे) हाँ, मै भी मूर्खा हूँ। यदि पुत्र के लिए माँ की ममता मूर्खता है, तो ऐसी मूर्खता सदैव ही मुझमें बनी रहे। आप पण्डित बनें, शास्त्री हो, विद्या के आचार्य हो। मेरे लाल को मूर्ख समझें और मुझे भी।

श्रीधर —सुशीला, अब तुम्हे मै कैसे समझाऊ ?

सुशीला—कही आप ही ने तो उसे घर आने से नही रोक दिया ?

श्रीधर —मैंने ?

सुशीला—हाँ, आपने !

श्रीधर —मैंने कभी रोका है ? कभी रोक सकता हूं ?

सुशीला—पिता सब कुछ कर सकता है । वह उसे घर से निर्वासित कर सकता है, जाति से निर्वासित कर सकता है, समाज से निर्वासित कर सकता है ।

श्रीधर —किन्तु हृदय से निर्वासित नहीं कर सकता ।

सुशीला—हृदय से न सही; घर से तो निर्वासित कर ही सकता है ।

श्रीधर —यदि वह अन्याय का आचरण करे, धर्म के प्रतिकूल चले, तो वह भी सम्भव है ।

सुशीला—तो आपने ही उसे आने से रोक दिया है ।

श्रीधर —मैंने रोका तो नहीं किन्तु यदि वह मेरी बात का उल्टा अर्थ लगाए, तो मैं क्या करूँ ?

सुशीला—तो आपने ही मेरे लाल से ऐसी बातें की हैं जो उसे कष्टकर हुई ।

श्रीधर —यदि कष्टकर हो तो उसकी अपनी धारणा है ।

सुशीला—तो आपने उसकी ताडना अवश्य की होगी ।

श्रीधर —यदि पिता चाहता है कि उसका पुत्र सुमार्ग पर चले, तो कभी-कभी ताड़ना अनिवार्य हो जाती है ।

सुशीला—तो आपने उसकी ताडना की है ?

श्रीधर —हाँ, मैंने की है ।

सुशीला—इसीलिए वह नहीं आया ! क्या मैं कारण जान सकती हूँ ?

श्रीधर —अवश्य । इधर मैंने देखा कि वह शास्त्रार्थ में अनेक पण्डितों को पराजित कर रहा है ।

सुशीला—तो यह तो आपकी प्रसन्नता का विषय होना चाहिए ।

श्रीधर —होना तो चाहिए किन्तु मैं इधर देखता हूं कि पण्डितों की हार से उसका अहंकार बढता जा रहा है । उसे अपनी विद्वत्ता

का घमंड हो गया है । उसका गर्व सीमा का अतिक्रमण कर रहा है । यह मुझे सहन नहीं हो सकता ।

शीला—तो क्या आप मेरे लाल से ईर्ष्या करते है ?

ीधर —मूर्ख हो तुम भी । क्या पिता भी पुत्र से कभी ईर्ष्या कर सकता है ? क्या बीजाकुर अपने पुष्प से कभी ईर्ष्या करेगा ? किन्तु मै यह सहन नहीं कर सकता कि मेरा पुत्र दंभी हो । मै दभी पुत्र का पिता होना अपमान समझता हूँ ।

ुशीला—तो आपने उसे ताडना दी ?

श्रीधर —हाँ, उसे ताडना दी । और उग्र रूप से ।

सुशीला—क्या कहा आपने ?

श्रीधर —मैने कहा कि तू महामूर्ख है, दभी है, अज्ञानी है ।

सुशीला—यह आपने भारवि से एकात में कहा या पण्डितो के सामने ?

श्रीधर —पण्डितो के सामने । मुझे किसका सकोच है ? पण्डितो के सामने ही मैंने अनुशासन किया ।

सुशीला—पण्डितो के सामने ही ? पण्डितो ने क्या कहा ?

श्रीधर —कहेगे क्या ? वे भारवि की ओर देखकर हसने लगे । भारवि के स्वर में ही बोलकर वे उसका परिहास करने लगे और ताली पीटने लगे ।

सुशीला—और बेचारा भारवि ?

श्रीधर —भारवि ने एक बार व्यथित दृष्टि से मेरी ओर देखा । फिर ग्लानि से अपने हाथो से अपना मुख छिपा लिया और तव वह एक ओर चुपचाप चला गया ।

सुशीला—आपने रोका नही ?

श्रीधर —नही, यदि रोकता तो अनुशासन की मर्यादा कैसे रहती ?

सुशीला—मेरे लाल से अधिक प्रिय आपको अपने अनुशासन की मर्यादा थी ।

श्रीधर —सुशीला ! मोह में मत बहो । अनुशासन की मर्यादा पर बडे

श्रीधर —रात्रि में तू उसे खोज न सकेगी, आभा ! मैं ही जाऊँगा ।

आभा —जो आज्ञा । स्वामिनी भोजन कर लें तो बडी कृपा हो ।

सुशीला—आभा, तू जा । मैं भोजन न करूगी । मुझे कष्ट न दे ।

आभा —मुझे क्षमा करें । एक निवेदन और है—महाकवि से परिचित एक युवती प्रवेश चाहती है । वह स्वामी के दर्शन की अभिलाषा रखती है ।

श्रीधर —मेरे दर्शन की '? मै इस समय किसी से नही मिल सकूँगा ।

सुशीला—आने दीजिए । सभव है, कवि से परिचित होने के कारण उससे लाल के सम्बन्ध मे कुछ सूचना मिल सके । आभा, बुला ले ।

श्रीधर —अच्छा, भीतर भेज दे ।

आभा —जो आज्ञा ।

सुशीला—गई ! आभा कहती है कि मै भोजन कर लूं ।

श्रीधर —सुशीला, मैं तुम्हारे हृदय के दु ख को समझता हूँ ! मैं निश्चय ही कल प्रात काल सभी जनपदो में जाऊंगा और भारवि को खोज कर तुम्हारे पास ले आऊँगा ।

सुशीला—आपके अनुशासन की मर्यादा तो भग न होगी !

श्रीधर —अनुशासन के स्थान पर अनुशासन और प्रेम के स्थान पर प्रेम है । प्रेम पर ही अनुशासन निर्धारित है और अनुशासन पर ही प्रेम । यदि प्रेम न हो तो अनुशासन का कोई मूल्य नही ।

सुशीला—आपको विश्वास है कि भारवि किसी जनपद मे मिल जायगा ?

श्रीधर —मुझे विश्वास है कि जब वह अनियमित कार्यो से मुक्त है, तो किसी न किसी जनपद में अवश्य मिल जायगा ।

सुशीला—यदि नही मिला तो...

श्रीधर —तो मै राजकीय सहायता की प्रार्थना करूँगा । राजकीय शक्ति उसे कही से भी प्राप्त कर सकती है ।

सुशीला—आप मुझ पर महान् उपकार करेंगे ।

श्रीधर —मोह के वशीभूत न बनो । तुम पर मेरा उपकार कैसा ? तुम

शाति से शयन करो । मै कल प्रात काल भारवि सहित लौटूँगा ।

ीला—परसो से गया है मेरा लाल, कौशेय वस्त्र धारण कर, पीत रग का अधोवस्त्र और नील रँग का उत्तरीय ! कुचित केश ! मस्तक पर पीत चदन की पत्रावलि, मध्य में अरुण-बिन्दु । शास्त्रार्थ के लिए जाते समय मैने अपने हाथो से उसे पुष्पहार पहिनाया था। उसने मुझे प्रणाम किया था। स्नेह गद्गद् हो मैने कहा—विजयी बनो । उसके मुख पर हल्की मुस्कराहट थी। क्या जानती थी कि आज भी उसे पिता की भर्त्सना मिलेगी ।

ीधर —भावुक मत बनो, सुशीला । विश्राम करो । मै तुम्हे वचन दे चुका हूँ कि तुम्हारा भारवि कल तुम्हारे पास होगा ।

ुशीला—आज ही हो सकता था वह मेरे पास । यदि आप पुत्र-प्रेम से अधिक शास्त्र-चिन्तन को महत्व न देते ।

ीधर —मै समझता था कि वह सदा की भाँति अवश्य घर लौट आयेगा। मैने भी थोडी मर्यादा रक्खी। किन्तु उस मर्यादा की सीमा समाप्त हो गई । कल मै जाऊँगा । हम उसकी पत्नी के प्रति भी तो उत्तरदायी है और वह यहाँ नही है ।

सुशीला—मेरे लिए न सही तो उसकी पत्नी के लिए ही आप कवि को खोज कर लायें ।

(भारती का प्रवेश)

भारती —मै आ सकती हूँ। प्रणाम करती हूँ। मेरा नाम भारती है।

सुशीला—भारती ? आओ देवी ! तुम कवि भारवि से परिचित हो ?

भारती —वसन्त ऋतु में कोकिल के स्वर से कौन परिचित नही ? प्रभात में भैरव राग के स्वर किसे जागरण का सन्देश नहीं देते ? पूर्णिमा के आकाश में अमृत का कलश चंद्रमा, अंधकार के हृदय में भी प्रकाश की मदाकिनी प्रवाहित कर देता है।

ऐसे ही हैं महाकवि भारवि । उन्हे कौन नही जानता ?

सुशीला—तुम उन्हे कब से जानती हो, देवी ?

भारती —गत पूर्णिमा के पर्व मे उन्होने जो शास्त्रार्थ किया था, उसमें शास्त्र को जैसे जीवन मिल गया । आज तक वेदान्त की इतनी सुन्दर मीमासा मैंने नही सुनी जैसी महाकवि भारवि के मुख से सुनी । जैसे ब्रह्म-ज्ञान सरस्वती की वीणा पर नृत्य कर रहा हो ।

सुशीला—धन्य है मेरा कवि !

श्रीधर —इस समय तुम्हारे आने का अभिप्राय क्या है, देवी भारती ।

भारती —महाकवि के दर्शन ! उनका सत्सग ज्ञान का सागर है जिसके तट पर बैठ कर मै अनुभूति की लहरे गिन सकती हूँ ।

श्रीधर —लेकिन भारवि यहाँ नहीं है ।

सुशीला—हाँ, कवि अभी तक नही आया ।

भारती —मैने तो उन्हे मालिनी-तट पर देखा था । सोचती थी कि इस समय तक वे यहाँ आ गये होगे ।

सुशीला—कब देखा था ? किस समय देखा था, देवी ?

भारती —आज प्रात काल उषा वेला मे ।

सुशीला—तुम उससे मिली थी ?

भारती —नही ! वे उस समय ध्यान-मग्न थे । ज्ञात होता था जैसे वे भारती की उपासना कर रहे हो ।

सुशीला—भारती की ?

भारती —(हस कर) मेरी नही । वीणापाणि भारती की, सरस्वती की । मैंने उनका ध्यान भग नही करना चाहा । सोचा, बाद में उनसे वार्तालाप करूँगी ।

सुशीला—फिर वार्तालाप किया ?

भारती —नही, वे उद्विग्नता से उठकर एक ओर चले गये । मै उन्हे पा न सकी ।

सुशीला—उसके बाद पता पाया कि वह कहाँ गया ।

भारती —नहीं, फिर मैं न जान सकी कि वे कहाँ गये ।

सुशीला—वह तब से आया भी नही । उसके पिता भी तब से उनकी प्रतीक्षा कर रहे है ।

भारती —ये उनके पिता है ! प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला—आयुष्मती बनो । देवी भारती ! भारवि जैसे ही आएगा तुम्हारे आने की सूचना दे दी जायेगी ।

भारती —मैं कृतार्थ हुई । किन्तु आप कष्ट न करें । कल प्रात.काल मैं पुन सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी ।

सुशीला— यदि इस बीच तुम्हे उसकी सूचना मिले देवी, तो मुझे सूचना देना । मैं कृतार्थ होऊँगी ।

भारती —अवश्य ! तो मुझे आज्ञा दे । प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला—आयुष्मती बनो !

(प्रस्थान)

सुशीला—देवी भारती से भी मेरे लाल की कोई सूचना नहीं मिली ।

श्रीधर —अच्छा, अब तुम विश्राम करो, शात मन से, स्थिर चित्त से ।

सुशीला—विश्राम ! स्थिर-चित्त ! (व्यग्य की दबी हसी) माँ के लिए विश्राम और स्थिर-चित्त जब उसका पुत्र उसके पास नहीं है । आप विश्राम करें, शास्त्र-चिंतन समाप्त करें ।

श्रीधर —मैं भी उठता हूँ । तुम शैया पर जाओ, बहुत देर से आसन पर बैठी हो । पैर में शून्यता हो जाएगी । कल जब भारवि आयेगा, तो उठ भी न सकोगी ।

सुशीला—उठ भी न सकूँगी । आप शयन करें, मैं अपनी शैया पर चली जाऊँगी ।

श्रीधर —उठो, मैं सहायता दे दूँ । स्थिर-चित्त से शयन करो । उठो, मैं वचन देता हूँ कि कल भारवि को अपने साथ ही ले आऊँगा ।

सुशीला—आप मेरे जीवन का सबसे बडा कार्य करेंगे । चलिये
(सुशीला उठकर अपनी शय्या पर जाती है ।)

श्रीधर —अब ठीक है । मै दीपक मन्द कर देता हूँ । यह लो, अ
इस शैया पर शयन करो । मै भी शयन करते हुए सोचूं
कि सबसे पहले कहाँ जाऊँ !

सुशीला—वह अपनी ग्लानि में कही दूर चला गया होगा ।

श्रीधर —चाहे जितनी दूर चला जाय । मै तो उसे लाऊँगा ही ।

सुशीला—लाइए, अवश्य लाइए । उसके बिना मै जी न सकूँगी । पूर्णि
के चन्द्र की तरह वह मेरा एक ही लाल है । महाकवि, मह
पण्डित, भारवि !

श्रीधर —(नेत्र बन्द किये चिंतित मुद्रा मे)—हूँ ! (कुछ शांति
शयन करो ।

(कुछ देर तक स्तब्धता)

सुशीला—(कुछ क्षण बाद) मुझे नीद नही आ रही है । मन न जा
क्या-क्या सोचता है ।

श्रीधर —अपना मन स्थिर करो । (कुछ शाति) ऊपर देखो, आका
में कितने तारे है—ये एक दूसरे से कितनी दूर है किन्तु इन
से कोई चिंतित नही है । सभी समान रूप से चमक रहे है ।

सुशीला—इन तारो में कोई माता न होगी ।

श्रीधर —अपने मन को कल्पना से मुक्त करो । सुशीला, ईश्वर की
शक्ति में विश्वास रक्खो । बीज से फूल कितनी दूर रहता
है किन्तु बीज कभी मलीन नही होता । वह फूल को
प्रफुल्लित रखने के लिए निरन्तर रस भेजा ही करता है ।
तुम भी मंगल-कामना करो कि जहाँ भी तुम्हारा पुत्र हो
सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे ।

सुशीला—मेरा पुत्र जहाँ भी रहे, सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे ।

श्रीधर —हाँ, ईश्वर की शक्ति कण-कण में वर्तमान है, वह सबका

पोषण करता है, उस पर विश्वास रक्खो ।

सुशीला—मैं विश्वास रखती हूँ ।

श्रीधर —अब सो जाओ । विश्वात्मा का ध्यान करते हुए । मैं वही श्लोक पढता हूँ । मेरे स्वर में अपना स्वर धीरे-धीरे मिलाकर शयन करो...(श्रीधर धीरे-धीरे श्लोक पढते है और सुशीला उनके स्वर में स्वर मिलाती है ।)

ॐ ईशावास्यमिद सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्

त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा (कुछ खटका होता है)

सुशीला—(चौक कर) यह खटका कैसा ! क्या मेरा भारवि आ गया !

श्रीधर —अरे, यह तो हवा का झोका है जिससे द्वार पर शब्द हुआ है । तुम व्यर्थ ही इतनी व्यग्र हो, सुशीला । शान्त रहो ।

सुशीला—मैं शान्त हूँ । शब्द से मुझे भ्रम हुआ कि मेरा कवि आ गया । वह भी आते समय द्वार पर ऐसा ही शब्द करता था ।

श्रीधर —तुम्हारा भारवि कल अवश्य आ जायगा । तुम शान्त हो। देखो प्रकृति भी शान्त है ।

सुशीला—मैं शान्त कैसे रहूँ, चुप अवश्य हो जाऊँगी, किन्तु शान्ति में भी जुगनू को देखो जो अपने जीवन का प्रकाश लिये हुए चारो ओर उड रहा है—शायद इसका भी लाल कहीं खो गया है। कीट-पतङ्ग तक अपने लाल को खोज सकते है, मैं अपने जीवन का प्रकाश लिये हुए शान्त रहूँ,चुप रहूँ । हाय रे मनुष्य ! तू कीट-पतङ्गो से भी गया बीता है ।

श्रीधर —सुशीला, मैं बहुत दुखी हूँ तुम्हें देख कर । यदि तुम इतनी अशान्त हो, तो मैं अभी ही तुम्हारे पुत्र को खोजने के लिए जाता हूँ ।

सुशीला—अन्धकार में वह कहा मिलेगा ? प्रातःकाल जाइये । किंतु मेरी प्रार्थना है कि अब आप मेरे लाल की निन्दा करना छोड़

दे। आप सबके सामने उसे मूर्ख और विकल-बुद्धि बतलाया करते हैं इससे उसे मर्मान्तक कष्ट होता है। वह पण्डित है, बुद्धिमान् है, अब से ऐसा न करें।

श्रीधर —सुशीला, मैं आज तुम्हें एक बात बतलाऊँ ?

सुशीला—मेरे लाल के सम्बन्ध में ?

श्रीधर — हाँ, भारवि के सम्बन्ध में। बात यह है कि मेरा लाल आज संसार का महाश्रेष्ठ महाकवि है। दूर-दूर देशों में उसकी समानता करने का किसी को साहस नहीं है। वह शास्त्रार्थ में बड़े-से-बड़े पण्डितों को पराजित कर चुका है। उसका पाण्डित्य देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। किन्तु मेरे भारवि के मन में धीरे-धीरे अहङ्कार स्थान पाता जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि भारवि और भी अधिक पण्डित और महाकवि बने। पर अहङ्कार उन्नति का बाधक है। मैं उस अहङ्कार पर अंकुश रखना चाहता हूँ। जिसे अपने पाण्डित्य का अभिमान हो जाता है वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि मैं समय-समय पर उसे मूर्ख और अज्ञानी कहता हूँ। प्रशंसा तो सभी करते हैं किंतु अधिकारी से निन्दा भी होनी चाहिये। मैं नहीं चाहता कि अहङ्कार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय।

सुशीला—(विह्वल होकर) क्या कहा आपने ?

श्रीधर —मैं नहीं चाहता कि अहङ्कार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय।

सुशीला—तो जो आप मेरे लाल पर क्रोध प्रकट करते हैं वह सच्चा नहीं है ?

श्रीधर —अणु मात्र भी नहीं। इस क्रोध में पुत्र के प्रति मङ्गल-कामना छिपी है। मेरा पुत्र और भी विद्वान् हो, और यशस्वी बने।

सुशीला—ओह, आप कितने महान् हैं ?

(यकायक दरवाजा खोलने की तीखी आवाज होती है। भारवि हाथ में तलवार लिए लड़खड़ाते हुए आते है।)

भारवि—पिता, पिता !

सुशीला
श्रीधर —(सम्मिलित स्वर मे) भारवि।

भारवि—हा, मै भारवि हूँ।

सुशीला—(विह्वल होकर) बेटा, तू कहा रहा ? मेरे बेटे, तू इतना निष्ठुर कैसे हो गया ? तू कहा था ? तेरी इतनी ..तेरी इतनी .तू क्यो चला गया था ? कहा था, मेरे बेटे ? (सिसकने लगती है।)

भारवि—माँ, शान्त रहो। अपने चित्त को स्थिर रक्खो।

सुशीला—तेरे पिता भी कहते है अपने चित्त को स्थिर रक्खो, तू भी यही कहता है। मै कहा ले जाऊ अपने चित्त को ? प्रभु, इस ससार में मा के चित्त को स्थिर क्यो नही बनाया ?

भारवि—माँ, मै यह कहता हूँ—

सुशीला—बेटा, अब मैं कोई बात नहीं मानूँगी, तू बतला कि तूने अभी तक कुछ खाया या नही ? मै दो दिनो से तेरा भोजन लिए बैठी हूँ।

भारवि—मै इतनी ग्लानि मे हूँ मा, कि सम्भवतः मुझे जीवन भर भूख न लगे।

सुशीला—तो तूने अभी तक कुछ नही खाया।

भारवि—नहीं, माँ।

सुशीला—ओह, मेरा लाल, दो दिन का भूखा है। मैं अभी भोजन लाऊँगी। मैं अभी लाऊँगी (नेपथ्य में पुकारती हुई जाती है।) आभा, आभा ! कवि आ गया, उसने अभी तक भोजन नहीं किया। कहाँ है, कहाँ है उसका भोजन...भोजन .''

भारवि—पिता, मैं आपका पुत्र होने योग्य नहीं हू। इस तलवार से

मेरा मस्तक काट दीजिए।

श्रीधर —वत्स, तुम्हारे मुख में ये शब्द शोभा नही देते। अपनी मर्यादा सुरक्षित रक्खो। मैं फिर कहता हूँ कि तुम मूर्ख हो। विकल-बुद्धि हो।

भारवि—सचमुच ही मैं मूर्ख हू। विकल-बुद्धि हूँ। और यह तभी प्रमाणित होगा जब आप मेरा मस्तक तलवार से काट देंगे।

श्रीधर —मेरे वाक्यो का प्रमाण तलवार के प्रमाण की आवश्यकता नही रखता। तलवार का प्रमाण निर्बलो का प्रमाण है। निर्भीक वाक्य सबलो का प्रमाण है।

भारवि—किन्तु पिता, यह तलवार मेरा मस्तक नही काटेगी, उस ग्लानि को काट देगी, जो पिछले दो क्षणो से मेरे जीवन को झझा की भाँति झकझोर रही है।

श्रीधर —ग्लानि से जीवन उत्पन्न नही होता, वत्स। जीवन से ग्लानि उत्पन्न होती है और इस तरह ग्लानि प्रधान नही है, जीवन प्रधान है। जब तुम जीवन के अधिकारी हो तो जीवन की शक्ति से ही ग्लानि को दूर करो, तलवार की अपेक्षा क्यो करते हो? और हाँ, तुम तो महाकवि हो! तुम्हारे हाथो में लेखनी चाहिए, तलवार नहीं। यह तलवार कैसी?

भारवि—पिता, मैं महाकवि नही हूँ, तभी तो हाथो में लेखनी नहीं है, तलवार है। जीवन का स्वामी नही हूँ, तभी तो ग्लानि का मुझपर अधिकार है।

श्रीधर —ग्लानि काला बादल है, वत्स! जो जीवन के चन्द्र को मिटा नहीं सकता। कुछ क्षणो के लिए उसके प्रकाश को रोक ही सकता है। उत्साह के प्रवाह से बादल को हटा दो।

भारवि—वह रक्त के प्रवाह से ही हटेगा, पिता! और वह रक्त मेरे मस्तक का होगा।

श्रीधर —मस्तक में सहस्र दल है वत्स, जिसमें ब्रह्म का निवास होता है।

ग्लानि के पोषण के लिए ब्रह्मद्रव की आवश्यकता नही है । किन्तु मै यह पूछता हूँ कि इस मूर्खता के धूमकेतु की रेखा कितनी लम्बी जायगी ? मैंने तुम्हारे दोष दिखलाए तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए था । यह नही कि ग्लानि से दो दिन घर आने का नाम भी न लो ! बेचारी मां को दुखी और चिंतित रक्खो ! उसने तुम्हारे वियोग में दो दिन से भोजन नही किया । अब आधी रात में तुम आये हो, तुम्हारे हाथ में यह तलवार है और पिता से तुम अपना मस्तक काटने को कहते हो । मूर्ख पुत्र ! मेरे हृदय में पिता की भावना आज तुमसे लाछित हो रही है।

भारवि —पिता, यह सब स्वीकार करता हूँ । आपसे विवाद करना मुझे और कष्टप्रद होगा । किन्तु मै अपनी निर्बलता आपके सामने प्रकट करना चाहता हूँ । पिछले दो दिनो का कार्य प्रतिशोध से परिचालित था ।

श्रीधर —प्रतिशोध !

भारवि —हा पिता, प्रतिशोध ! आपने मुझे लाछित किया । जब मैं शास्त्रार्थ में विजयी हुआ, आपने मुझे सार्वजनिक रूप से लाछित किया । जिन पण्डितो को मै पराजित करता था, वे ही आपके वाक्यो को लेकर मेरा परिहास करते थे— सभाओ मे लाछित करते थे । दो बार जब आपने सब पण्डितो के सामने मेरी निन्दा की तो मै क्रोध और ग्लानि से भर गया । मै घर नही लौट सका । मेरी सारी विजय की उमङ्ग रसातल मे चली गई । मैने समझ लिया कि जबतक मेरे पिता वर्तमान है तबतक मैं इसी प्रकार लॉछित होता रहूँगा ।

श्रीधर —यह सत्य है ।

भारवि —मैं आत्म-हत्या नही कर सकता था क्योकि वह एक जघन्य पाप है । मैने अनेक बार सोचा । पिता को तो पुत्र की उन्नति से

सुख होना चाहिए, किन्तु पिता को मेरी उन्नति से अप्रसन्नता होती है; पिता को मेरे दोष-ही-दोष दीख पडते है । वे मुझे लांछित करते है । एकांत मे लाँछित करते तो मुझे कोई हानि न होती, किन्तु विद्वन्मण्डली मे वे मेरा अपमान करते है ।

श्रीधर —मेरा अभिप्राय विद्वन्मण्डली मे ही तुम्हारे दोष दिखलाने का रहा है ।

भारवि —जिन पण्डितो ने मेरे ज्ञान को अपने सिर पर पुष्प-माला की भाँति धारण किया, उन्ही पण्डितो के समक्ष मेरा अपमान मुझे शूल की भाति खटक गया और आपके प्रति मेरा क्रोध अन्तिम सीमा तक पहुँच गया ।

श्रीधर —(मुस्करा कर) अंतिम सीमा तक । फिर तुमने क्या किया ?

भारवि —मै पूरे आठ प्रहर तक मन-ही-मन जलता रहा । फिर मैने यही ठीक समझा कि मै पिता के जीवन को समाप्त कर दूँ ।

श्रीधर —हाँ, पिता के ? कितना अच्छा होता कि मुझे अपनी मृत्यु पुत्र के हाथो मिलती !

भारवि —मैने अपने मित्र विजयघोष के शस्त्रागार से यह पैनी तलवार चुनी जिसकी तीखी धार के स्पर्शमात्र से जीवन का सूक्ष्म तन्तु बिना किसी शब्द के क्षण मात्र में ही कट जाता । मै सध्या से ही इस घर के कोने में छिपा हुआ था । जब आधी रात में माताजी और आप निद्रा में लीन रहते तो मै दबे पाव आकर आपकी ग्रीवा पर यह तलवार रख देता । माताजी को भी ज्ञात न होता कि वे जीवन की किस दिशा में चली गई है । प्रात काल जब उन्हे ज्ञात होता और नगर में यह बात फैलती तो मै भी आता । मेरा प्रायश्चित्त यह होता कि जीवन भर माता की कठिन सेवा कर उन्हें वैधव्य के कष्ट का अनुभव न होने देता ।

श्रीधर —फिर तुमने क्यो नहीं किया ? यह कार्य तो तुम अब भी

कर सकते हो !

भारवि —पिता ! मुझे और अधिक लाछित न कीजिए । मेरी ग्लानि को अधिक न बढाइए । हाय रे, माता का हृदय, वे क्षणमात्र भी न सो सकी । आपको छेडती रही । उन्होने आपको सोने न दिया और जब बातो-ही-बातो में मुझे यह ज्ञात हुआ कि आपकी—आपकी यह पुत्रवत्सलता ही है कि आप पण्डितो के बीच मेरी निदा कर मेरे गर्वाकुर को नष्ट करते हैं; मेरे अहङ्कार को दूर कर मेरी अधिकाधिक उन्नति चाहते हैं तो मुझपर वज्रपात हुआ । मेरा सारा क्रोध पानी बन कर मेरी आखो से अश्रु-धारा के रूप मे निकल पडा। ओह पिता, आप कितने महान् हैं ! प्रतिदिन मेरी उन्नति के अभिलाषी ! मेरे अहङ्कार को दूर कर मुझे साधना के पथ पर बढाने वाले पिता ! मै पापी हूँ । पितृ-हत्या से प्रतिशोध लेने वाला यह नारकीय पुत्र आज प्रायश्चित्त-रूप में अपना मस्तक कटवाने की भिक्षा मागता है । (एक सिसकी)

श्रीधर —शान्त, शान्त ! किन्तु न तो मै प्रतिशोध लेता हूँ और न भिक्षा देता हूँ ।

भारवि —फिर भी मै दण्ड चाहता हूँ ।

श्रीधर —किन्तु मूर्ख, पितृ-हत्या का दण्ड पुत्र-हत्या नही है ।

भारवि —फिर भी शास्त्र की आज्ञानुसार जो दण्ड हो, वही दीजिए ।

श्रीधर —किन्तु मैने तुम्हें क्षमा किया वत्स । दण्ड की व्यवस्था पाप के स्थिर रहने मे है । जब यह पाप स्थिर नहीं रह सका तब दण्ड को आगे बढने की आवश्यकता नहीं है ।

भारवि —आपसे शास्त्रार्थ करना मेरी अल्पज्ञता है, पिता ! पाप के लिये न सही, मेरे प्रायश्चित्त के लिये भी तो कुछ व्यवस्था होनी चाहिये ।

श्रीधर —तेरे लिये पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है ।

भारवि —आप महान् हैं, पिता ! किन्तु जबतक आप प्रायश्चित्त की व्यवस्था मेरे लिये न करेंगे तबतक मेरे जीवन में एक ऐसी आग लगी रहेगी जिसका बुझाना मेरे लिये असम्भव होगा। पिता अपनी पुत्र-वत्सलता में अडिग रहे और पुत्र पितृ-हत्या का निश्चय कर भी अदण्डित रहे ? मेरे लिये यह क्षमा असह्य होगी।

श्रीधर —माता की सेवा कर असह्य को सह्य बनाओ ।

भारवि —पिता, माता की सेवा तो मेरे जीवन की चरम साधना है ही; किन्तु यदि आप चाहते है कि आपका भारवि जीवित रहे तो उसे दण्ड दीजिए।

श्रीधर —पुत्र यदि जीवन को दण्ड समझ ले तो क्या हानि है ?

भारवि —पिता, मै जीवन को दण्ड नही समझना चाहता। यह ब्रह्म की विभूति है। इसे चिन्ता में घुलाना, पाप में लपेटना, दुख में बिलखाना सबसे बडा अपराध है । इससे तो अच्छा है कि मै आपकी अनुमति से दण्ड-स्वरूप आत्महत्या-जैसे जघन्य पाप .

श्रीधर —(बीच ही) भारवि !

भारवि —पिता ! मेरे मन की शान्ति के लिये आप शास्त्रानुसार दण्ड की व्यवस्था दे।

श्रीधर —छः मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना ।

भारवि —छः मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना। बस ठीक, आज से मेरा यह प्रायश्चित्त प्रारम्भ हुआ। यह लीजिए तलवार (फेंक देता है।) इसे आप कृपया मेरे मित्र विजयघोष के पास पहुचा दीजिए और मुझे इस प्रायश्चित्त की पूर्ति की आज्ञा दीजिए।

श्रीधर —किन्तु यह प्रायश्चित्त इसी क्षण से क्यो प्रारम्भ हो ?

(नेपथ्य में 'वेटा, यह गरम-गरम भोजन जल्दी से कर ले' (धीरे-धीरे पास आती हुई) तू बहुत भूखा होगा। जल्दी से भोजन कर ले ।)

सुशीला—(पास आकर) ला, तुझे मैं अपने हाथो से खिलाऊ।

भारवि—नहीं, मां ! मुझे जूठा भोजन चाहिये।

सुशीला—(आश्चर्य से)—जूठा भोजन !

भारवि—हां मां, आज से छ मास तक जूठा भोजन ही मेरा खाना है ।

सुशीला—(आश्चर्य से)—छ' महीने ?

भारवि—तूने भी तो भोजन नहीं किया है ।

सुशीला—वेटा, तू खा ले ! मेरी आत्मा को तृप्ति हो जाएगी । मैं जी जाऊँगी।

भारवि—नही, पहले मैं अपने हाथो से तुझे एक ग्रास खिला दूं ।

सुशीला—पहले तू खा ले।

भारवि—नहीं मां, मेरी प्रार्थना मान ले। मैं तुझे खिला दूं ।

सुशीला—(ग्रास लेकर) धन्य मेरे लाल, अब ले तू खा ले।

भारवि—नहीं मां, मुझे क्षमा कर। छ. महीने वाद तुम्हारे इन हाथो से भोजन करूँगा।

सुशीला—छ महीने वाद ! यह वात क्या है ? देखिये, (श्रीधर की ओर) यह छ महीनो की वात कैसी !

श्रीधर —(गम्भीर स्वर में)–यह उसका प्रायश्चित्त है ।

सुशीला—प्रायश्चित्त ! कैसा प्रायश्चित्त ?

भारवि—यह पिताजी स्पष्ट करेंगे। अव मुझे देर हो रही है। पिता जी, आज्ञा दें । माता आज्ञा दीजिए—आप दोनो के चरणो की धूल सिर पर रख लू। अव मैं अपने आपसे प्रतिशोध लूंगा। माता, प्रणाम । पिता, प्रणाम !

सुशीला—भारवि, मेरे लाल !
श्रीधर —गया भारवि।
सुशीला—मेरे लाल, लौट आओ !

(नेपथ्य मे भारवि का स्वर—प्रतिशोध ! प्रतिशोध !)

★

श्री उदयशंकर भट्ट

आपका जन्म सन् १८९७ मे इटावा मे हुआ। कई प्रान्तो मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद लाहौर चले गये। वही आप बँटवारे के पूर्व तक अध्यापन का कार्य करते थे। उसके बाद दिल्ली चले आये। तबसे आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन पर काम कर रहे हैं। इस समय आप सलाहकार के पद पर है।

आप केवल नाटककार नही हैं, बल्कि कवि, आलोचक और उपन्यासकार भी हैं। सबसे पहला एकांकी 'दस हजार' १९३८ मे प्रकाशित हुआ था। तबसे अनेक सुन्दर नाटको और एकांकियो की रचना कर चुके है और कर रहे है।

डा० रामकुमार वर्मा के शब्दो मे—"(आपके) एकांकियो मे मनोभाव बडी सरलता से स्पष्ट हो जाते है। पात्रो के अनुरूप भाषा की सृष्टि में तो सिद्धहस्त हैं। घटनाओ मे कौतूहल चाहे न हो, किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रो को स्पष्ट करने मे भट्टजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है।"

आपको विशेष सफलता गीति और भाव-नाटक लिखने मे मिली है। रेडियो-विधान के अनुकूल भी आपने अनेक नाटक लिखे है। मूलतः कवि होने के कारण आपकी नाट्य-कला मे कल्पना और यथार्थ का सुन्दर समन्वय हुआ है।

बीमार का इलाज

●

पात्र-परिचय

चन्द्रकांत : आगरे का एक रईस, जो अंग्रेजी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम भारी-भरकम, उम्र ४५ वर्ष।

कांति : चन्द्रकात का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग २१-२२ वर्ष।

विनोद : काति का समवयस्क मित्र।

शांति : काति का छोटा भाई।

सरस्वती : कांति की माँ, अपने पति से सर्वथा भिन्न, दुबली-पतली, पुराने विचारो की।

प्रतिमा : काति की बहन—एकदम मोटी, उम्र २४ वर्ष।

डा० गुप्ता, डा० नानकचन्द, वैद्य हरिचन्द, बूढा और सुखिया, पण्डित, पुजारी इत्यादि।

(आगरे में काति के पिता मि० चन्द्रकात की कोठी का एक कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप—सोफा सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएं मौजूद हैं—पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढ़िवादी गृह-स्वामिनी के कारण स्वच्छता, सलीके का अभाव, दरी पर बिछी हुई चादर काफी मैली है। जिस समय का यह दृश्य दिखाया ज़ा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे है। काति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात मे ज्वर हो गया, लगभग १०४ डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है, फिर भी ज्वर की तेज़ी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद काति 'नाइट ड्रस' मे कन्धे पर तौलिया डाले चपलियाँ फटफटाता, सीटी बजाता बाये दरवाजे से कमरे मे आता है।)

कांति —हलो विनोद, अमा अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे है। क्या भूल गए, आज गाव जाना है? मै तो स्वय देर से उठा, वरना मुझे कबतक तैयार हो जाना चाहिए था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया, यार! (पास जाकर) क्या बात है? खैर तो है?

विनोद —रात न जाने क्यो बुखार हो गया (हाथ फैलाकर) देखो?

कांति —(देह छूकर) ओह, सारी देह अगारे की तरह दहक रही है।

विनोद —कम्बख्त बुखार कैसे आ धमका?

काति —यार, इस बुखार ने तो सारा मजा किरकिरा कर दिया। इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टिया बिताने के लिए यहा आगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहा घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गाव की सैर करेंगे।

विनोद —मालूम होता है, मेरे भाग्य में गाव की सैर नही लिखी है। ये छुट्टिया बेकार ही गई।

काति —गाव का रास्ता बडा ऊबड-खाबड है। इस दशा में तुम्हारा गांव जाना असम्भव है। सोचता हू, मैं भी न जाऊ, पर जाये बिना काम भी तो नही चलेगा। कल चाचाजी शायद मुकदमे के लिए बाहर चले जायेंगे, न जाने कबतक लौटें! कहो तो मैं अकेला ही हो आऊ—इफ यू डोण्ट माइण्ड!

विनोद —नही, नही, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊगा। कोई बात नही।

कांति —तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। डाक्टर आ जायगा। पिता-माता सभी तो है। मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूगा।

विनोद —नही, नही, मामूली बुखार है, ठीक हो जायगा। जाओ।

(काति के पिता चन्द्रकात का प्रवेश)

चन्द्रकांत—(दूर से) किसको बुखार है, बेटा काति? अरे इतनी देर हो गई, तुम अभी तक गाव नही गये। धूप हो जायगी। धूप, धूल और धुआ इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफी है। उसपर घोडे की सवारी—न कूदते बने न सीधे बैठते। बुखार किसे हो गया बेटा?

कांति —बाबूजी, विनोद को रात बुखार हो गया। देह तवे की तरह गरम है। डाक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना?

चन्द्रकांत—है, है, विनोद कैसे जा सकता है? और फीवर, जगल में आग की तरह उद्दण्ड? अभी डाक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है, डाक्टर भटनागर

अब इस घर में कदम नही रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुखार उससे उतरता ही न था। यह एक दम बकरे के थन की तरह निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो उस विचारे का कसूर भी नही था, दवा तो उसने एक-से-एक बढिया दी; पर इससे क्या, बुखार तो नही उतरा। टाइफाइड को छोडकर चाहे उसका बाप भी क्यो न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना ही चाहिए। डाक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब तो गुप्ता ही मेरा फैमिली डाक्टर है। गुप्ता को बुलाओ। सुखिया, ओ सुखिया, जा जरा डाक्टर गुप्ता को तो बुला ला। कहना—वह काति के मित्र है न, जो प्रयाग से आये है, उन्हें बुखार हो गया है; जरा चलकर देख लीजिये। बाबूजी ने कहा है। बेटा, मान गया मै तो.

त —डा० भटनागर में मेरा 'फेथ' कभी नही रहा बाबूजी, लेकिन डा० नानकचन्द भी कम नही है। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है। मेरा तो दिन-पर-दिन 'होमियोपैथी' में विश्वास बढता जा रहा है।

चन्द्रकांत—(कमरे मे टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ-लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अन्तर ही क्या है। अरे होमियोपैथी भी कोई इलाज है! चाकलेट या मीठी गोलियां न दी; होमियोपैथिक दवा दे दी! याद रखो, बड़ो की बात गाठ बाध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डाक्टर का इलाज करो। 'कडवी भेषज बिन पिये, मिटे न तन को ताप'। ये बाल धूप में सफेद नही हुए है। कहते क्यो नही विनोद बेटा ?

विनोद —जी! (करवट बदल लेता है)

चन्द्रकांत—ये वैद्य-हकीम क्या जानें, हरड-वहेडा और शरबत-शोरवे के पण्डित !

कांति —मैं चाहता हू आप इस मामले में .

चन्द्रकांत—नही, यह नही हो सकेगा । मैं जानता हू विनोद का भला इसी में है ।

(सुखिया का प्रवेश)

सुखिया —सरकार वो बाबू आये हैं।

चन्द्रकांत—अबे कौन बाबू, नाम भी बतायेगा या यो ही .

सुखिया —वही जो उस दिन रात को आये थे।

चन्द्रकांत—लो और सुनो, गधो से पाला पडा है।

सुखिया —वह बाबू सरकार

चन्द्रकांत—कह दे, आता हू । और मैंने तुझे डाक्टर के पास भेजा था। जल्दी जा (स्वय भी चला जाता है)

काति —तुम घबराना मत । मैं डाक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊगा। अव्वल तो मेरा ख्याल है, शाम तक बुखार उतर जायगा । अच्छा विनोद, देर हो रही है चलू । अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है।

विनोद —हा, हा, तुम जाओ। मैंने बुखार की कभी परवाह नही की है, कान्ति। उतर जायगा अपने-आप । शाम तक लौटने की कोशिश करना।

कांति —अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा । लेकिन जाना जरूरी है। अच्छा, विश यू आल राइट।

(सीटी बजाता चला जाता है)

विनोद —नमस्कार। (करवट बदल कर लेट जाता है)

(कांति की मा सरस्वती का प्रवेश)

सरस्वती—(कमरे मे घुसते ही) विनोद, क्या बात है ? उठो चाय वाय तैयार है। कुछ खाओ पियो। (पास जाकर) क्या बात है,

खैर तो है ? कुछ तवियत खराव है क्या ? (पलंग के पास जाकर विनोद को छूकर) आय-हाय ! देखो तो कितना बुखार है ! मुह ईगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का—घबराओ मत बेटा, मै अभी वैद हरिचन्द को बुलाती हू। देखकर दवा दे जायगे। बडे काबिल वैद है, विनोद। जरा कपडा ओढ लो न। (उढाती है) जैसा कांति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनो एक हो। क्या सिर में कुछ दर्द है ! (हाथ फेर कर) कब्जी होगी। अभी ठीक हो जायगी। सुखिया, ओ सुखिया। न जाने कहां मर गया। इन नौकरो के मारे तो नाक में दम हो गया है। अरे शाति, ओ शाति। (शाति आता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद जी को बुला ला, देखकर दवा दे जायगे। भैया वैद हो तो ऐसा हो

विनोद —माताजी, बाबू जी ने डाक्टर गुप्ता को बुलाया है। शायद काति ने डाक्टर नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वती—लो और सुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डाक्टर को न कुछ आवे है, न जावे है। न जाने क्यो डाक्टर गुप्ता के पीछे पडे रहे हैंगे। क्या नाम है उस मरे भटनागर का ? इन दोनो ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया। जा बेटा शाति, जा तो सही जल्दी।

शांति —जाऊं हू मॉ। (चला जाता है)

सरस्वती—अरी प्रतिमा, ओ प्रतिमा, (दूर से ही आवाज़ आती है—(हा मा क्या है ?') देख जरा मन्दिर में पण्डितजी पूजा कर रहे है। उनसे कहियो, जरा इधर होते जाय। और देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भैया बीमार है। मैने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा !

विनोद —(उत्सुकता से करवट वदल कर) पण्डितजी का क्या होगा यहां मा ?

सरस्वती—बेटा, जरा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डितजी रोज पूजा करने आवे है। मार्जन कर देगे सारी। अला-गला दूर हो जायगी। तुम पढे-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूगी भैया ? पिछले दिनो प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पंडित जी के मार्जन से ही अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुखार-उखार तो नाम के है, असली तो ये ग्रह, भूत ही है जो बुखार बनकर आ जाय हैंगे। सिर दबा दू क्या बेटा ? जैसे काति वैसे तुम। तबतक न हो थोड़ा-सा दूध पी लो। अरी मिसरानी, ओ मिसरानी ? (दूर से आवाज—'आई बहू जी') अरी देख थोडा दूध तो गरम कर लाइयो।

विनोद —दूध तो मै नही पीऊंगा, माताजी।

सरस्वती—(चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। जरा ओढ लो, मै अभी आई। (जैसे ही जाने लगती है वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डितजी, कमरे मे आते है। सरस्वती पण्डितजी से) देखो पण्डित जी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न ? मेरे काति का मित्र है। देखो एक साथ पढे है। तुम्हें नही मालूम आज-कल वो आया है न ! चाचा ने बुलाया है, आज गांव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस विचारे को बुखार हो गिया। जरा मत्र पढकर मार्जन तो कर दो।

पण्डितजी—क्यो नहीं, वहूजी, मत्र का वडा प्रभाव है। पुराने समयो में दवा-दारू कौन करे था। वस, मत्राभिसिक्त जल से मार्जन करा के वीमारी गई। तुम तो वीमारी की कहो हो,

यहा तो मरे जी उठे थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था। (आखे मटकाकर) हा ऐसा था मन्त्र का प्रभाव ।

सरस्वती—सच कहो हो पण्डितजी, जरा कर तो दो मार्जन । वैसे मैंने अपने उन वैदजी को भी बुलाया है । शान्ति गया है बुलाने।

पण्डितजी—तभी, तभी, मैं भी कहू आज शान्ति बाबू नही दिखाई दिये। ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पडें तो वह कैसे बचकर जायगा। अच्छा ये काति बाबू के दोस्त हैं ! अच्छा है भैया, खुश रहो, पढो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यो बहूजी ?

सरस्वती—हां और क्या, पर आजकल के ये पढे-लिखे कुछ मानें तब न, ? तुम्हारे उन्ही को देख लो, कुछ दिनो से डाक्टरो के चक्कर में पडे है। मै कहू हू, अपने बुजुर्गो की दवाइया क्यो छोडी जायं ! जब ये डाक्टर नही थे तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था ? सभी ठीक होय थे । अब न जाने कैसा जमाना आ रिया है !

पण्डितजी—जमाना बडा खराब है, बहूजी ! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही।

सरस्वती—अच्छा पण्डितजी, मार्जन कर दो, मैं अभी आई । (चली जाती है। पण्डित मत्र पढकर विनोद के ऊपर बार-बार जल छिड़कता है । इसी समय डाक्टर को लेकर चन्द्रकांत प्रवेश करता है।)

चन्द्रकांत—हैं हैं, अरे क्या हो रहा है ? (पास जाकर) बस करो, ब्राह्मण देवता, बस करो, (जोर से) अरे, तुम क्या समझते हो इसे भूत है ? रहने दो। न जाने इन औरतो को कब बुद्धि आयेगी। अरे, डाक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिये न ।

पण्डितजी—बस, थोडा ही मार्जन रह गया है, बाबूजी।

(मार्जन करता है)

डा० गुप्ता—महाराज, क्यो मारना चाहते हो बीमार को। निमोनिया हो जायगा, निमोनिया। (पण्डित डाक्टर के कहने पर भी मार्जन किये जाता है) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त!

चन्द्रकात—(कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नही, डाक्टर गुप्ता क्या कह रहे है ? निमोनिया हो जायगा।

पण्डितजी—जैसी आपकी इच्छा। मेरा तो विचार है कि विनोद बाबू का इतने से ही बुखार उतर गया होगा। (चला जाता है)

डा० गुप्ता—मन्त्रो से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड झोकने को इतना पढते! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा! (डाक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है।) बुखार तेज है। जीभ दिखाइये। पेट दिखाइये। (थर्मामीटर लगाकर नाडी की गति गिनता है, फिर थर्मामीटर देखकर) १०४ डिगरी। कोई बात नही, ठीक हो जायगा। दवा लिखे देता हू, डिस्पेन्सरी से मगा लीजियेगा। दो-दो घटे बाद। पीने को केवल दूध। यू विल बी आल राइट विथ इन टू आर थ्री डेज।

चन्द्रकात—डाक्टर गुप्ता, ये कान्ति के दोस्त है। बिचारे उसके साथ सैर को आये थे।

डा० गुप्ता—ठीक हो जायगे। बेचैनी मालूम हो, बुखार न उतरे तो बरफ रखियेगा सिर पर।

चन्द्रकात—ठीक है। (विनोद से) घबराने की बात कोई नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुखार है। मै अभी दवा लाता हू।

डा० गुप्ता—मै शाम को भी आकर देख लूगा। अच्छा मिस्टर चन्द्रकात! (एक तरफ से दोनो चले जाते है। दूसरी तरफ

से सरस्वती आती है।)

सरस्वती—क्या हुआ, पण्डितजी चले गये ? मार्जन कर गये ?

विनोद —(चुपचाप पडा रहता है)

सरस्वती—(देह छूकर) अब तो बुखार कम है । देखा मत्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड गया। (वहीं से चिल्ला कर) प्रतिमा, ओ प्रतिमा, सुनियो री जरा।

प्रतिमा —(वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

सरस्वती—देख तो पण्डितजी गये क्या । बुखार तो कुछ उतरा दिखाई दे है। उनसे कह जरा और थोडी देर मार्जन कर दें । (प्रतिमा जाती है)

विनोद —नहीं रहने दीजिये । वे मार्जन कर गये है ।

सरस्वती—क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित तो है। आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें। मखौल है क्या, बीस रुपये महीना, तीज-त्यौहार इसपर आटा-सीधा अलग। तीस तो पडी जाय हैंगे। ऊपर से भी आमदनी हो जायगी।

(प्रतिमा आती है)

प्रतिमा —पण्डितजी तो गये, अम्मा।

विनोद —माताजी, मार्जन रहने दीजिये। काफी हो गया।

(चुप हो जाता है। वैद हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं)

सरस्वती—लो वैदजी आ गये। आओ वैदजी।

हरिचन्द—क्या बात है बहूजी ? सवेरे-ही सवेरे शान्ति जो पहुचा तो मैं डर गया। कायदे से किसी आदमी को देखकर वैद्य को खुश होना चाहिये, परन्तु मेरी आदत और ही है, मैं तो चाहता हू अपनी जान-पहचान के लोग सदा प्रसन्न रहें । हा, क्या बात है ? (सकेत से पूछता है)

सरस्वती—ये कान्ति के साथ पढे है वैदजी। छुट्टियो में उसीके सग सैर को आया, सो विचारा बीमार पड़ गया । जरा

देखो तो—

(जसे ही वद नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है।)

विनोद —डाक्टर गुप्ता भी देख गये हैं, माताजी।

हरिचन्द—फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है ? (एक दम दूर जा खडा होता है) मै ऐसे रोगियो का इलाज नहीं करता। उसी डाक्टर का इलाज करो। और मै तो राजा भूपेन्द्रसिह के यहा जा रहा था। सोचा बाबू-जी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिये।

(लौटने लगता है)

सरस्वती—बैदजी, उनकी भली चलाई। आने दो डाक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मै क्या कान्ति के मित्र को और बीमार होने दूगी ? नही, तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरो ने प्रतिमा को मार ही दिया था। तुम्ही ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा ? इस घर मे डाक्टरी नही चलेगी।

हरिचन्द—(पास जाकर विनोद को देखते हुए) हाँ, सोच लो। मै उन लोगो मे से नही हू, जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मै अच्छी तरह जानता हू, बाबू चन्द्रकात डाक्टरो के चक्कर मे पड गये है, जो अग्रेजी दवाइयाँ देकर लोगो को मार देते है। (व्यग से हंसकर) ये डाक्टर भी अजीब है। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई ! न देश, न काल ! (विनोद को देखकर) पेट खराब है। काढा देना होगा। एक गोली दूंगा, काढे के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती—(उछल कर) मै कह नही रही थी, कब्जी से बुखार है।

कहो विनोद, क्या कहा था ? घोडी नही चढे तो क्या बरात भी नही देखी ! बहुत-सी बीमारी का इलाज तो मै खुद ही कर लू हूँगी ।

हरिचन्द—बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबला। बडे-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते है । अभी उस दिन राजा साहब के यहाँ सारे शहर के डाक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नही आ रहा था क्या बीमारी है । मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया यह बीमारी है ।

सरस्वती—(वैद की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गए ।

हरिचन्द—मानते न तो क्या करते ! वह सिक्का बैठा कि शहर भर में धूम मच गई । अब रोज जाता हू ।

सरस्वती—आराम आ गया फिर ? भला क्यो न आराम आता । हमारे वैदजी क्या कोई कम है ।

हरिचन्द—अभी देर लगेगी । पुराना रोग है । ठीक हो जायगा ।

सरस्वती—अरे, तो आराम नही आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्द—उनकी बडी लडकी ।

सरस्वती—(साश्चर्य) वह गप्पो, क्या वैदजी ? बडी अच्छी लडकी है बिचारी । राम करे अच्छी हो जाय !

हरिचन्द—हाँ। अच्छा, चला । काढा और गोली भेज दूगा । पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा । उस दिन राजा साहब बोले—वैद्यजी हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है ।

सरस्वती—सो तो है ही । तुम्हे क्या कमी है ! मै तुमसे यही तो कहूँ हू कि हमे तो वैदजी की दवा लगे है । पर न जाने

हरिचन्द—सस्ती दवा, थोडी फीस, देशकाल के अनुसार । और क्या मै डाक्टरी नही जानता ? मैने भी तो मेटीरिया मेडिका सर्जरी पढी है ।

सरस्वती—सो तो है ही वैदजी ।

(सरस्वती वैद के साथ एक द्वार से निकल जाती है ।
दूसरे से चन्द्रकान्त सुखिया के साथ दवा लेकर आते है ।)

चन्द्रकांत—लो बेटा विनोद, खुराक पी लो । अभी ठीक हो- जाओगे ।

(विनोद को उठाकर दवा पिलाता है)

विनोद —अभी वैद हरिचद भी देखने आये थे ।

चन्द्रकांत—(चौककर) आये थे ? वे मूर्ख वैद ! वह क्या जाने इलाज करना । इन औरतो के मारे नाक में दम है साहब । दवा तो नही पी न ? अच्छा दो-दो घण्टे बाद -दवा लेते रहना । पीने को दूध, बस और कुछ नही । मै काम से जा रहा हूँ । (जाते-जाते सुखिया से) देख, तू यहाँ बैठ । बाबू की देख-भाल करना भला !

सुखिया —जी सरकार ।

(चन्द्रकान्त चला जाता है)

बाबू मै तो झाड-फूँक मे विश्वास करता हू । हाथ फेरते ही बुखार उतर जायगा । यह ओझा से पानी लाया हूँ । दो घण्टे मे बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैने तो छोटे बाबू से सवेरे ही कहा था—कहो तो ओझा को बुलाऊँ पर वे न माने । कहा, तू पागल है सुखिया । मै चुप हो रहा । क्या करता, गरीब आदमी ठहरा । अभी दो घण्टे मे बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू !

विनोद —अरे कही बुखार भी झाड-फूँक से गया है सुखिया ! मैं तो गाँव का रहने वाला हू । मैंने तो कही नही देखा कि बुखार झाड-फूँक से उतरता है । जरा पानी तो दो ।

सुखिया —(दरी पर बैठकर तमाखू खाता हुआ) शर्त बद लो शर्त ! और वह ओझा तो वैदगी भी जाने है । हमारे यहां तो कोई भी और कही नही जाय हैगा । वैसे तुम्हारी मर्जी ।

पानी पियोगे ? देता हू। यही पानी पी लो न। किसी को मालूम भी न होगा। न दवा न दारू। (पानी देता है।)

विनोद —(पानी पीकर) नही सुखिया, ओझा की कोई आवश्यकता नही है। कांति गया क्या ?

सुखिया —गये होगे। घोड़ी तो दो दिन से खडी थी। अब तो पहुँचने वाले होगे।

(इसी समय सरस्वती कटोरे मे काढा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है।)

सरस्वती —लो बेटा विनोद, ज़रा जी कडा करके पी तो लो। ऊपर से ये गोली खा लो। नही नही, पहले गोली फिर काढा। मै भी कितनी भुलक्कड हूँ !

विनोद —दवा तो अभी मै पी चुका हूँ, माताजी। बाबूजी पिला गये है।

सरस्वती —क्या कहा, दवा दे गये है ? कोई हर्ज नही, फायदा तुम्हे इसी दवा से होगा। यह काढा ऐसा-वैसा नही है। एकदम लाभ होगा और मेरा तो तजुर्बा है। प्रतिमा मर रही थी, इन्ही वैदजी ने उसे जिलाया। लो पी तो लो। (कटोरा देती है। विनोद चुपचाप काढा पीने लगता है, इसी समय चन्द्र-कान्त लौट आते है। विनोद को दवा पीते देखकर।)

चन्द्रकांत—यह क्या हो रहा है विनोद ?

सरस्वती—दवा दे रही हूँ और क्या ?

चन्द्रकांत—तुम पागल हो चुकी हो। विनोद डाक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है। और उसे और दवा देना !

सरस्वती—सुनो मै नही मानती। मै डाक्टर की दवा और डाक्टर दोनो को व्यर्थ समझती हूँ। मालूम नही है, प्रतिमा को इस डाक्टर ने मार ही डाला था, वह तो कहो वैद हरि-चन्द ने बचा लिया।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो। कही डाक्टर मूर्ख होता है ? मूर्ख है ये वैद्य, जो कुछ नही जानते । प्रतिमा को तो डाक्टर से लाभ हुआ था।

सरस्वती —बिल्कुल गलत। दवा तो मै देती थी । मुझे मालूम है, किससे लाभ हुआ उसे ।

चन्द्रकांत—विनोद, दवा मत पियो; हर्गिज न पियो। वैद्यो की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है।

सरस्वती —बेटा, यह काढा पीना बहुत आवश्यक है। इसे बिना पिये तुम्हे लाभ ही न होगा। इन्हे कहने दो । ये ऐसे ही कहते रहे है। यदि इन वैदजी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गई होती।

चन्द्रकांत—(कटोरा विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने ससार से मूर्खता कब जायगी ! लो इसे पियो।

सरस्वती —नही, यह नही हो सके हेगा। तुम्हे मालूम है वैद हरिचन्द की दवा से प्रतिमा मरते-मरते बची है। पराया लडका है बिचारा, कान्ति के साथ सैर को आया है । डाक्टरो के चक्कर मे पडा और बस । मै हा हा खाती हूँ, इसे डाक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद, क्या मै इस घर की कोई भी नही हूँ।

चन्द्रकांत—क्या तुम यह नही जानती कि औरतो में बुद्धि थोडी होती है। मेरा कहा मानो और विनोद को डाक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा, सरस्वती !

सरस्वती —देखो जी, तुम क्या बात है मुझे ही सदा दबाते रहते हो। इस घर मे कोई भी मेरी नही सुने हैगा। (एक दम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढा गोली जमीन पर रख कर रोने लगती है। आचल से आसू पोछती हुई) जैसे मै इस घर की कोई भी नही हूँगी । ईं ई ईं ईं न अच्छी

बात सुने हैगे न समझ की बात ई ई ईं ईं (रोती है)

चन्द्रकांत—(हैरान रहकर) अरे तो भगवान्, मैंने तुझे गाली कब दी। मैंने तो यही कहा है कि डाक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती —(रोते हुए) ईं ई ई ई और गाली किसे कहे हैगे। मुझे मरी को मौत भी तो नही आवे है । एक दफा मर जाऊ तो रोज-रोज का झंझट तो जाय । (रोकर) वैद हरिचन्द ने जहर तो नही दिया है, काढा और गोली ही तो दी है। फिर न जाने इतनी जिद क्यो है । मै क्या कोई इसकी दुश्मन हूँ। (हिचकी भरकर) अच्छा करो तो बुरा होय है। (अकडकर) मै साफ कह दू हूँ, विनोद पियेगा तो काढा ही, डाक्टर की दवा हरगिज हरगिज नही पियेगा।

चन्द्रकात—मै कहता हूँ विनोद डाक्टर की दवा पियेगा ।

सरस्वती —मै कहती हूँ विनोद वैद की दवा पियेगा ।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो, तुम्हे कोई कहाँ तक समझावे। मैंने दुनिया देखी है । मैं जानता हूँ आजकल किसकी दवा से फायदा होता है । देखो जिद न करो।

सरस्वती —(अडती हुई) देखो मेरी सुनो, घर के मामले में तुम्हें बोलने का कोई अधिकार नही है । विनोद अगर दवा पियेगा तो वैद की। वैदजी अभी तो कह गये है कि विनोद का बुखार ठीक हो जायगा। समझे कि नही।

चन्द्रकांत—नहीं, नही हरगिज नही । विनोद दवा पियेगा तो डाक्टर की। नही तो कोई दवा न पियेगा।

विनोद —इससे तो अच्छा यह है कि मै कोई दवा न पीऊ।

सरस्वती —यह कैसे हो सके हैगा भैया, मै मर जाऊ। इससे तो अच्छा है भगवान् मुझे उठाले। अब इस घर में मेरी कोई जरूरत नही है। हाय राम, दूसरो के सामने भी मेरा अपमान हो

रिया है और तुम देख रहे होगे। (क्रोध से) मै तो अपना सिर फोड लूगी। इस घर में अब मेरी जरूरत ही क्या है। ले पी विनोद !

चन्द्रकांत—(लाचारी से) अच्छा भाई, काढा पी लो, मुझे क्या। अजब परेशानी मे जान है इन औरतो के मारे ! तुम लोग कभी कोई नई बात नही सीखोगी। कभी दूसरे का कहना न मानोगी। कभी भला-बुरा न सोचोगी। (अकड कर) डाक्टर मेरा चाचा तो नही लगता; लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छा होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम डाक्टर की दवा पियो। अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला रहा। क्यो विनोद ?

सरस्वती —देखा, लगे उसे वहकाने। वह क्या जाने बेचारा। मै कहू हू एक दिन वैद की दवा देकर तो देखो। लो वेटा, पियो तो सही काढा।

चन्द्रकांत—और मै दुश्मन हू।

सरस्वती —तुम क्यो दुश्मन होते। राम करे इसके दुश्मन रहे ही नहीं ! पियो तो सही।

विनोद —(दोनो को हाथ जोडकर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड दें तो मै शाम तक ठीक हो जाऊगा।

दोनों —(चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है। दवा तो तुम जानो पीनी ही पडेगी।

विनोद —नही नही, आप क्षमा करे वावूजी, मै अग्रेजी दवा पीने का आदी नही हू।

सरस्वती —(चिल्लाकर) मैने कहा था न कि विनोद को वैदजी की दवा से ही आराम होगा।

विनोद —नही मै वैद्य की दवा भी न पीऊगा। मे वैसे ही ठीक हो जाऊगा, माताजी।

(उठकर चलने को तैयार होता है । इसी समय कान्ति डाक्टर नानकचन्द के साथ प्रवेश करता है ।)

कांति —आइये डाक्टर साहब, मैंने कहा (पिता को देखकर) विनोद को जरा डाक्टर साहब को भी दिखा दूं । (विनोद की तरफ देखकर) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो। क्या बात है ? सुनो, देखो डाक्टर साहब आये है—होमियोपैथिक है। सुनो विनोद !

विनोद —मेरा बुखार घूमने से उतरता है कान्ति । मै घूमने जा रहा हू। (जाता है)

डाक्टर —ही इज सफरिंग फरहेप्स फ्राम किग्स डीसीज। इनको नींद में घूमने की बीमारी मालूम होती है।

कांति —(चिल्लाकर) बिचारा विनोद ! मै जाता हू। शायद वह अपने आपे में नहीं है।

चन्द्रकांत—लेकिन डाक्टर ने तो बुखार की दवा दी है।

सरस्वती —और, वैदजी ने अपच का काढा, डाक्टर साहब।

सुखिया —फायदा तो मेरे लाये पानी से हुआ है। मैं ओझा से फूकवाकर पानी लाया था ।

डाक्टर —मिस्टर कान्ति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं, चलो।

सब —(चिल्लाकर) ओ : डाक्टर !

(परदा गिरता है)

★

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

'अश्क' का जन्म १४ दिसम्बर १६१० को जालन्धर नगर मे हुआ। आप कवि, कथाकार, उपन्यास-लेखक, आलोचक तथा नाटककार सभी कुछ है। आपने शिक्षा, पत्र-सम्पादन, आल इण्डिया रेडियो और सिनेमा आदि अनेक क्षेत्रों मे काम करके अनुभव प्राप्त किया है। बीमार हो जाने के कारण बम्बई और उसी के साथ सिनेमा-ससार को छोडना पडा। स्वस्थ होने के बाद से इलाहाबाद में प्रकाशन का काम कर रहे हैं।

पहला एकाकी 'पापी' सन् १६३७ मे 'विशाल-भारत' मे प्रकाशित हुआ था। तब से निरन्तर सुन्दर और सफल एकांकियो की सृष्टि कर रहे है। आपके एकाकी मौलिक, सोद्देश्य तथा कलापूर्ण हैं। सुपाठ्य होने के साथ-साथ वे अभिनेय भी है। रगमच, सिनेमा और रेडियो तीनो—विधानों पर एकसा अधिकार है।

आपकी कला पर साधना और अनुभूति की गहरी छाप है। सजीवता और सहानुभूति आपकी कला के गुण हैं। व्यंगात्मक और रोमैंटिक चित्रण में विशेष सफल हुए हैं।

लक्ष्मी का स्वागत

●

पात्र-परिचय

रौशन : एक शिक्षित युवक

सुरेन्द्र : उसका मित्र

भाषी : उसका छोटा भाई

पिता . रौशन का बाप

मा . रौशन की माता

अरुण : रौशन का बीमार बच्चा

स्थान—जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान ।

समय—नौ-दस बजे सुबह ।

(दालान मे सामने की दीवार से मेज लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पडी है । मेज पर बच्चो की किताबे बिखरी पडी हैं। दीवार के दाये कोने मे एक खिड़की है, जिसपर मामूली छीट का पर्दा लगा है । बाये कोने मे एक दरवाजा है, जो सीढियो मे खुलता है । दाई दीवार मे एक दरवाजा है जो कमरे मे खुलता है, जहा इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पडा है ।

दीवारो पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरे कीलो से जड़ी हुई हैं । छत पर कागज का एक पुराना फानूस लटक रहा है ।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की मे से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है । वहा की सॉय सॉय और मेह के थपेडे सुनाई देते है ।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खडा हो जाता है—और पर्दा हटाकर बाहर देखता है ।

दाई ओर के कमरे मे रौशनलाल दाखिल होता है ।)

रौशन—(दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नही आया ?

सुरेन्द्र—नही ।

रौशन—वर्षा हो रही है ।

सुरेन्द्र—मूसलधार ! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नही हुआ ।

रौशन—शायद ओले पड रहे है ।

सुरेन्द्र—हॉ, ओले भी पड रहे है ।

रौशन—भाषी पहुच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हा, पहुच ही गया होगा । यह-वर्षा—और-ओले ! वाजारो में घुटनो तक से कम पानी नहीं होगा ।

रौशन—लेकिन अबतक उन्हें आ जाना चाहिए था । (स्वय वढकर, खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है) अरुण की तवियत गिर रही है ।

सुरेन्द्र—(चुप)

रौशन—उसकी सास जैसे हर घडी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे वन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली है; पर वह कुछ कह नही सकता, वेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप विटर-विटर ताक रहा है । आखें लाल और शरीर गर्म है । सुरेन्द्र, जव वह सास लेता है तो उसे वडा ही कष्ट होता है । मेरा कलेजा मुह को आ रहा है । क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा । देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है ।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं । हवा की सॉय-साँय)

रौशन—नहीं, कोई नहीं, हवा है ।

सुरेन्द्र—(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी ।

(रौशन वढकर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है)

रौशन—सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा ह ।

(वेचैनी से कमरे मे घूमता है । सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है ।)

—सुरेन्द्र, यह मामूली वुखार नही, यह गले की तकलीफ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है, कही अपनी मा की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नही देखा, सास लेने में उसे कितना कष्ट

हो रहा है !

(हवा की सॉय-सॉय और मेह के थपेड़े)

—यह वर्षा, यह आधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे है। कुछ अनिष्ट होने को है । प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाजें

(बिजली जोर से कडक उठती है । दरवाजा जरा-सा खुलता है। मा झाकती है ।)

मा —रौशी, दरवाजा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

(दरवाजा बन्द करके चली आती है ।)

रौशन—सुरेन्द्र. .

(सुरेन्द्र तेजी से जाता है । रौशन बेचैनी से कमरे मे घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भापी प्रवेश करते हैं । भापी के हाथ में इन्जेक्शन का सामान होता है ।)

डा० —क्या हाल है बच्चे का ?

(बरसाती उतार कर खूंटी पर टागता है और रूमाल से मुह पोछता है ।)

रौशन—आपको भाषी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है । कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और सास में तकलीफ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पडा है, जैसे अन्तिम सासो को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है ।

—चलो, चलकर देखता हूँ ।

—(सब बीमार के कमरे मे चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। मा तेजी से प्रवेश करती है ।)

—भाषी ! भाषी !

(बीमार के कमरे से भापी आता है ।)

—देखो भापी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है? (आखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख्याल है, वही लोग आये है

मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिए और बरसातियां पहने—

भाषी —वही कौन ?

मा —वही जो सरला के मरने पर अपनी लडकी के लिए कह रहे थे। बडे भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बडा काम है। इतनी वर्षा मे भी

(जोर-जोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज़ आती है। भाषी भागकर जाता है, मा खिड़की मे जा खडी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।)

सुरेन्द्र —भाषी कहा है ?

मा —बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

(सुरेन्द्र फिर तेजी से वापस चला जाता है। मा एक बार पर्दा उठाकर खिडकी से झाकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे मे घूमती है। भाषी दाखिल होता है।)

मा —कौन है ?

भाषी —शायद वही है। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

मा —क्यो ?

भाषी —उनके साथ एक स्त्री भी है।

(मा जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है—)

सुरेन्द्र —भाषी !

भाषी —हा।

सुरेन्द्र —इधर आओ।

(भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिये खामोशी। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से

किवाड़ो के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।)

रौशन —डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाज़ुक है।

रौशन —बहुत नाज़ुक है ?

डाक्टर—हा !

रौशन —कुछ नही हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नही, लेकिन आपने बहुत देर कर दी है। खन्नाक* (Diphtheria) में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन —हमें मालूम ही नही हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो गया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार में है—उन्होंने गले में आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्स्चर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से खराब हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नही, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झडी लग गई।

(ज़रा कांपता है)

—ओले, आंधी और तूफान ! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

(बाहर हवा की साय-साय सुनाई देती है। डाक्टर सिर

---

*Diphtheria—गले का सक्रामक रोग, जिसमे सास बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

नीचा किये खडा है, रौशन उत्सुक नजरो से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-जोर से हिलते फानूस को देख रहा है।)

डाक्टर—(सिर उठाता है) मैंने इजेक्शन दे दिया है। भाबी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हे सुनकर मै बचाव के तौर पर इजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भाबी को मेरे साथ भेज दो, मै इसे नुस्खा लिख देता हू, यही बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवा की दो-चार बूदें टपकाते रहना और एक घटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घटे तक यह ठीक रहा तो मै एक इजेक्शन और कर जाऊगा। इजेक्शन के सिवा डिप्थीरिया का दूसरा इलाज नही।

रौशन —डाक्टर साहब.. (आवाज भर आती है।)

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद

रौशन —मै अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखूगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो जाना नही, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नही चाहते, बडा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोडा समझते है। इसकी मृत्यु चाहते है, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र —तुम क्या कह रहे हो रौशन ? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं ? मूल से ब्याज प्यारा होता है ?

डाक्टर—क्या कह रहे हो, रौशनलाल ?

रौशन —आप नही जानते डाक्टर साहब ! यह सब लोग हृदयहीन है, आपको मालूम नही। इधर मै अपनी पत्नी का दाहकर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र —यह तो दुनिया का व्यवहार है, भाई !

रौशन —दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफरत करता हूं ! क्या ये लोग नहीं समझते कि यह जो मर जाती है, वह भी किसी की लडकी होती है, किसी माता-पिता के लाड में पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौडते हैं ! स्मृति-मात्र से मेरा खून उबलने लगता है !

डाक्टर—(चौंककर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूं। (भाबी से) भाबी, चलो।

(डाक्टर साहब और भाबी का प्रस्थान)

रौशन —सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड कर चला जायगा ? मैं तो इसका मुँह देख कर सन्तोष किये हुए था। उस-जैसी सूरत, उसी-जैसी भोली-भाली आँखें, उसी-जैसे मुस्कराते ओठ, उसी-जैसा सीधा सरल स्वभाव ! मैं इसे देखकर सरला का गम भूल चुका था, लेकिन अब, अब

(हाथों से चेहरा छिपा लेता है)

सुरेन्द्र —(उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर मे क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे !

रौशन —(भर्राये गले से) मुझे उसपर कोई विश्वास नही रहा। उसका कोई भरोसा नही—क्रूर, कठिन और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुःख दिया, जो हमपर ये बिजलियाँ गिराई गईं, हमें इतना दुःख दिया गया !

सुरेन्द्र— दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता

हूँ, भाषी क्यों नही आया।

(उसे दरवाजे के अन्दर ढकेलकर मुड़ता है। दाई ओर के दरवाजे से माँ दाखिल होती है।)

मा —किधर चले ?

सुरेन्द्र —जरा भाषी को देखने जा रहा था ?

मा —क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र —उसकी हालत खराब हो रही है।

मा —हमने तो बाबा बोलना ही छोड दिया। ये डाक्टर जो न करें थोडा है। बहू के मामले मे भी तो यही बात हुई थी। अच्छी भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही था, दो-दो वर्ष भी रहता है, पर यह डाक्टर को लाए बिना न माना। डाक्टरो को आजकल दिक के बिना कुछ सूझता ही नही। जरा बुखार पुराना हुआ, जरा खासी आई कि दिक का फतवा दे देते है। 'मुझे दिक हो गया-है !'—यह सुनकर मरीज की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले है। बीमारियाँ हुई, कष्ट हुए, कभी डाक्टरो के पीछे भागी-भागी नही फिरी। क्या बताया डाक्टर ने।

सुरेन्द्र — डिप्थीरिया ?

मा —वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र —बडी खतरनाक बीमारी है, माजी ! अच्छा भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है।

मा —(कापकर) राम-राम, तुम लोगो ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला। उसे जरा ज्वर हो गया, छाती जम गई, बस मै घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नही।

सुरेन्द्र —नही-नही, वह कैसे हो सकता है। आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ?

(चलने को उद्यत होता है)

मा —सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है।)

मा —मैं तुमसे बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र —कहिए।

मा —आज वह फिर आये हैं।

सुरेन्द्र —वे कौन ?

मा —सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लडकी का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नही, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र —माजी

मा —तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा ही है। गिरे हुए मकान की नीव पर ही दूसरा मकान खडा होता है। रामप्रताप को ही देख लो, अभी दाह-कर्म सस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोडा था कि नकोदर वालो ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया। और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र —माजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

मा —यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है और यह पढ-लिख-कर माँ-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। और अभी तो चार नाते आते है, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न

करेगा। लोग सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लाछन लगायेंगे और फिर ऐसा कौन क्वारा है

सुरेन्द्र —तुम्हारा रौशन बिन-व्याहा नही रहेगा, इसका मैं यकीन दिलाता हू।

मा —यही ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिलते है। घर अच्छा है, लडकी अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है और सबसे बढकर यह है कि ये लोग बडे भले है। लडकी की बडी बहन से अभी मैंने बातें की है। ऐसी सलीके वाली है कि क्या कहू। बोलती है तो फूल झडते है। जिसकी बडी बहन ऐसी है, वह स्वय कैसे अच्छी न होगी ?

सुरेन्द्र —माजी, अरुण की तबियत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

मा —बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आए है। इस आंधी और तूफान मे कैसे उन्हे निराश लौटा दू !

सुरेन्द्र —तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती है ?

मा —तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हो, उन्हे बता दे, इतने मैं लडके के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र —मुझसे यह नही हो सकता माजी, बच्चे की हालत ठीक नही, बल्कि शोचनीय है। और आप जानती है, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे मे केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आंखो मे बिठाये रखता है, स्वय उसका मुह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वय कपडे पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नही मै उससे यह सब कैसे कहूँ ?

(बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन दाखिल होता है।

बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आखे फटी-फटी-सी।)

रौशन —सुरेन्द्र, तुम अभी यही खडे हो ? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ ! मेसी-बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भाषी आया क्यो नही ? क्षण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है !

(सुरेन्द्र एक बार खिडकी से बाहर देखता और फिर तेजी से निकल जाता है। मा, रौशन के समीप जाती है।)

मा —क्या बात है, घबराये क्यो हो ?

रौशन —माँ, उसे डिप्थीरिया हो गया है।

मा —सुरेन्द्र ने बताया है। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगो ने मिल-मिलाकर .

रौशन —क्या कह रही हो ? तुम्हे अगर स्वय कुछ मालूम नही तो दूसरे को तो कुछ करने दो।

मा —चलो, मै चलकर देखती हू।

(बढती है।)

रौशन —(रास्ता रोकता है) नही, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ है, उसे सास मुश्किल से आता है, उसका दम उखड रहा है, तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी। तुम यही रहो, मै उसे बचाने की अन्तिम कोशिश करूँगा।

(जाना चाहता है।)

मा —सुनो !

(रौशन मुडता है। मा असमजस मे है।)

रौशन —कहो !

मा —(चुप)

रौशन —जल्दी-जल्दी कहो, मुझे जाना है।

मा —वे फिर आये है।

रौशन —वे कौन ?

मा —वही-सियालकोट वाले !

रौशन —(क्रोध से) उनसे कहो, जिस तरह आये है वैसे ही चले जाँय।

(जाना चाहता है ।)

मा —रौशी !

रौशन —मैं नही जानता, मैं पागल हू या आप ! क्या आप मेरी सूरत नही देखती ? क्यो आपको इसपर कुछ लिखा दिखाई नही देता ? शादी, शादी ,शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हे शादी सूझ रही है। आखिर तुम लोगो को हो क्या गया है ? वह अभी मृत्यु शैय्या पर पडी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी, वह मर गई, मैं अभी रो भी न पाया कि तुम शगुन लेने पर जोर देने लगी। क्या वह मेरी पत्नी न थी ? क्या वह कोई फालतू चीज थी ?

मा —शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे फायदे की बात करते है, रामप्रताप

रौशन —(चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ? अनपढ, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहा है ? वह जानवर है !

मा —तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था...

रौशन —वे ..मा जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?

(तेजी से मुडकर कमरे मे चला जाता है और दरवाजा वन्द कर लेता है। हाथ मे हुक्का लिये हुए, खखारते खखारते रौशन के पिता का प्रवेश ।)

पिता —क्या कहता है रौशन ?

मा —वह तो बात भी नही सुनता, जाने वच्चे की तवियत वहुत खराव है ।

पिता —(खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

(जोर से आवाज देता है—)

रौशी, रौशी !

(खिडकियों पर वायु के थपेड़ो की आवाज)

(फिर आवाज देता है—)

रौशी, रौशी।

(रौशन दरवाजा खोल कर झाकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखे रुँआसी-सी और निगाहों मे करुणा।)

रौशन —(अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोले, आप क्या शोर मचा रहे है ?

पिता —इधर आओ !

रौशन —मेरे पास समय नही ?

पिता —(चीख कर) समय नही !

रौशन —धीरे बोलिये आप !

पिता —मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आए है, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बातचीत कर लो।

रौशन —मैं नहीं जा सकता।

पिता —नही जा सकता ?

रौशन —नहीं जा सकता !

पिता —तो मैं शगुन ले रहा हूँ ! इस वर्षा-आँधी-और-तूफान में मैं उन्हें अपने घर से निराश नही भेज सकता, घर आई लक्ष्मी को नही लौटा सकता। लडकी अच्छी है, सुन्दर है, घर के काम-काज मे चतुर है, चार-पाँच श्रेणी तक पढी है। रामायण, महाभारत बखूबी पढ लेती है।

(रोने की तरह रौशन हँसता है।)

रौशन —हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइए।

(खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।)

पिता —(रौशन की मा से) इस एक महीने मे हमने कितनो को इन्कार किया है, पर इनको कैसे इन्कार करें ? सियालकोट में वडी भारी इनकी फर्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हजारो का तो इनके यहा लेन-देन है। उन्हे कुछ वहू की वीमारी की ओर से आशका थी। पूछते थे—उसका देहान्त किस रोग से हुआ ?' सो भई मैंने तो यही कह दिया—दिक-विक कुछ नही थी, जिगर की वीमारी थी। (गर्व से) लाख हो, रौशन जैसा कमाऊ लडका मिल भी कैसे सकता है ? वेकारो की फौज दरकार हो तो चाहे जितनी मर्जी इकट्ठा कर लो। उस दिन लाला सुन्दरलाल अपनी लडकी के लिए कह रहे थे—कालेज मे पढती है। पर मैंने तो इन्कार कर दिया।

मा —अच्छा किया। मुझे तो आयु भर उसकी गुलामी करनी पडती—वच्चे को पूछते होगे ?

पिता —हॉ, मैंने तो कह दिया—वच्चा है, पर मॉ की मृत्यु के वाद उसकी हालत ठीक नही रहती।

मा —तो आप हॉ कर दे।

पिता —हॉ, मै तो शगुन ले लूगा।

(चले जाते है। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है। मॉ खुशी-खुशी मे घूमती है, कमरे मे भापी आता है और तेजी से निकल जाता है।)

मा —भापी !

भापी —मै डाक्टर के यहाँ जा रहा हू !

(तेजी से चला जाता है। वीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।)

सुरेन्द्र —माजी !

मा —क्या बात है ?

सुरेन्द्र —दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

मा —क्या ?

(आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है । हवा की साँय-साँय)

सुरेन्द्र —अरुण इस ससार से जा रहा है !

(फ़ानूस टूटकर धरती पर पड़ता है । मा भाग कर दरवाजे पर जाती है ।)

मा —रौशी, रौशी !

(दरवाजा अन्दर से बन्द है ।)

मा —रौशी, रौशी !

रौशन —(कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर मे) क्या बात है !

मा —दरवाजा !

रौशन —तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो !

मा —रौशी !

• •

(बाईं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज ।)

पिता —(सीढियों से ही ।) रौशन की माँ बधाई हो !

(रौशन के पिता का प्रवेश । मा उनकी ओर मुड़ती है ।)

पिता —बधाई हो मैंने शगुन ले लिया !

(कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन का प्रवेश)

रौशन —हा, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

(पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुँह खुला रह जाता है ।)

पिता —मेरा बच्चा ! (वहीं बैठ जाता है।)

मा —मेरा लाल ! (रोने लगती है।)

सुरेन्द्र —माजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो।

पर्दा

सेठ गोविन्द दास

नाटककार होने से पूर्व सेठ जी मध्य प्रान्त के एक प्रमुख राजनीतिक नेता हैं। आपका जीवन अनेक सघर्षो मे से गुजरा हैं। गांधी विचार धारा से प्रभावित है। उसी की छाप आपकी कला पर है। सन् १९२१ से ही आप कांग्रेस के साथ है।

प्रकाशित और अप्रकाशित लगभग दो दर्जन नाटक लिख चुके है। विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और समस्या-मूलक सभी प्रकार के नाटक लिखे है। कला पर आदर्शवाद का गहरा प्रभाव है।

सेठ जी ने एकाकी कला मे कई प्रकार के प्रयोग किये हैं। एकपात्री एकाकी (मोनो ड्रामा) भी लिखे है।

आपने कई पत्रो की स्थापना तथा उनका सम्पादन किया है। सिनेमा-ससार से आप परिचित हैं। इधर एक वृहद उपन्यास लिखा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति रह चुके है।

कंगाल नहीं

❁

पात्र-परिचय

राजमाता	:	सिलापरी गाव की मालगुजारिन, राजगोड वश की राजमाता
बड़े राजा	:	राजमाता का बडा पुत्र
मंझले राजा	:	राजमाता का मझला पुत्र
छोटे राजा	:	राजमाता का छोटा पुत्र
बड़ी रानी	:	बडे राजा की पत्नी
मंझली रानी	:	मॅझले राजा की पत्नी
राजकुमारी	:	राजमाता की पुत्री
स्थान	.	सिलापरी गाव (जिला सागर, मध्यप्रान्त)

नोट : इस नाटक की कथा मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता राय-बहादुर हीरालाल ने लेखक को बताई थी । कथा एक सत्य घटना है ।

स्थान : सिलापरी गॉव में राजमाता का घर

समय : सन्ध्या

(एक तरफ को राजमाता के घर की खपरेल परछी दिखाई देती है, जिसके कई खपरे टूट गये हैं। परछी मे एक ओर घर के भीतर जाने का दरवाजा दीखता है, जिस के किवाड़ो की लकड़ी भी टूट गई है। यह दरवाजा खुला हुआ है और इसके अन्दर घर के छोटे-से मैले-कुचले कोठे का एक हिस्सा दिखाई देता है। परछी के सामने मैदान है। मैदान के एक तरफ दूर पर गॉव के कुछ झोपडे दीखते है और दूसरी तरफ खेत का एक हिस्सा, जिसमे छोटी-छोटी विरल सूखी-सी फसल खडी है। परछी मे एक फटे बोरे पर राजमाता बैठी है। उनकी उम्र करीब ५० साल की है। रग सॉवला है। मुख और शरीर पर कुछ झुर्रियॉ पड गई है। बाल आधे से अधिक सफेद हो गये है। शरीर बहुत दुबला-पतला है। शरीर पर वे एक मैली सी लाल बुन्देलखडी सूती साड़ी पहने है जो कई जगह से फटी हुई है और जिसमे कई जगह थिगडे लगे है। राज-माता के पास बडी रानी और मॅझली रानी जमीन पर ही बैठी हुई है। दोनो सावले रग की है। बडी रानी की उम्र करीब पचीस वर्ष और मॅझली रानी की करीब बीस वर्ष की है। दोनो युवतियाँ होते हुए भी कृश है और उनकी आँखो के चारो तरफ के गढों और सूखे ओठो से जान पडता है कि उन्हे पेट भर खाने को नही मिलता। दोनो राजमाता के समान ही लाल रग की साडियॉ पहने है, जो कई जगह से फटी हुई और चिथड़ैली

भी हैं। दोनो के हाथो मे मोटी-मोटी लाख की एक-एक चूडी है। तीनो मे बात-चीत हो रही है। राजमाता की आँखो मे आसू भरे है।)

मॅझली रानी—कहा तक रज करोगी माँ, और रज करने से फायदा ही क्या होगा ?

राजमाता —जानती हूँ बेटी, पर जानने से क्या होता है, जो बात रंज की है, उसपर रज आये बिना नही रहता।

मॅझली रानी—पर माँ, जो बात बस की नही, उसपर रंज करना व्यर्थ है।

राजमाता —बिना बस की बात ही तो ज्यादा रज पहुँचाती है।

(घर के भीतर से छोटे राजा और राजकुमारी हाथ में एक-एक तस्वीर लिये हुए आते है। छोटे राजा की उम्र करीब बारह वर्ष की है। वह सॉवले रग और ठिगने कद का दुबला-पतला लडका है। एक मैली और फटी-सी धोती पहने है, जो घुटने के ऊपर तक चढी है। राजकुमारी करीब ८ साल की साँवले रंग की दुबली पतली लडकी है। एक मैली-सी लाल रग की फटी हुई साड़ी पहने है। साड़ी इतनी फट गई है कि उसके शरीर का अधिकाश हिस्सा साडी मे से दीखता है।)

छोटे राजा —माँ ! (राजकुमारी की ओर इशारा करके) यह कहती है दुर्गावती ने बावन गढ जीते थे, मै कहता हूँ सग्रामशाह ने। फैसला तुम करो, मै सच्चा हूँ या यह ?

राजकुमारी —हाँ, तुम फैसला कर दो, माँ ?

राजमाता —बेटा, सग्रामशाह ने बावन गढ जीते थे, दुर्गावती ने नहीं।

छोटे राजा —देखा, मैंने पहले ही कहा था, यह वीरता आदमी कर सकता है, औरत नहीं।

(राजकुमारी उदास हो जाती है)

राजमाता —(राजकुमारी को उदास देखकर) उदास हो गई, बेटी, पर हमारे कुल मे तो औरतें आदमियो से कम वीर नही हुई। सग्रामशाह ने बावन गढ जीते तो क्या हुआ, दुर्गावती उनसे कम वीर नही थी।

बड़ी रानी —हाँ, सग्रामशाह ने बावन गढ जीतकर वीरता दिखाई तो दुर्गावती ने अपने प्राण देकर।

मॅझली रानी—हाँ, जीत में वीरता दिखाना उतना कठिन नही, जितना हार में।

(राजमाता रो पडती है।)

बड़ी रानी —माँ, फिर वही, फिर वही।

छोटे राजा —(राजमाता के पास जाकर उनके निकट बैठकर) माॅ, तुम रोती क्यो हो ? मै सग्रामशाह से भी बडा वीर बनूँगा। उसने बावन गढ जीते थे, मै बावन शहर जीतूँगा।

राजकुमारी —(राजमाता के पास जाकर) और माॅ, मै दुर्गावती से भी बडी बनूँगी।

छोटे राजा —(सग्रामशाह की तस्वीर दिखाते हुए) देखो माॅ, सग्रामशाह से मै कितना मिलता-जुलता हूँ। अगर मेरी इस फटी धोती की जगह जैसे कपडे ये पहने है, वैसे पहना दो मुझे तलवार मँगवा दो, और ऐसा ही घोडा खरीद दो तो मै अकेला बावन शहर जीत लाऊँ।

राजकुमारी —और माँ, देखो मै दुर्गावती से कितनी मिलती हूँ। अगर तुम मुझे भी दुर्गावती जैसे कपडे पहना दो, हथियार मँगवा दो और जैसे हाथी पर ये बैठी है, वैसा हाथी मँगवा दो तो मै भी दुर्गावती से बडी वीर बन जाऊँ।

(राजमाता के और अधिक आसू गिरने लगते हैं।)

बडी रानी —(छोटे राजा और राजकुमारी को हाथ पकड कर उठाते हुए) अच्छा, राजाजी, और बाईजी, मेरे साथ चलो,

मैं तुम दोनो को सब चीजें मँगा दूँगी।

(दोनो को लेकर बड़ी रानी घर के भीतर जाती है। मँझली रानी राजमाता के निकट सरककर अपनी फटी साडी से राजमाता के आँसू पोछती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

मँझली रानी—माँ, थोडा तो धीरज रखो।

राजमाता —बहुत जतन करती हूँ, बेटी, धीरज रखने के बहुत जतन करती हूँ, पर जब इन बच्चो की ऐसी बाते सुनती हूँ, तब तो हृदय मे ऐसा शूल उठता है जैसा भूखे-पेट और नगे-तन रहने पर भी नही। (कुछ ठहर कर) और बेटी एक बात जानती है ?

मँझली रानी—क्या, माँ ?

राजमाता —ये बच्चे ही इन तस्वीरो को लिए घूमते है और ऐसा सोचते और कहते है, यह नही। तेरे मालिक और बडी बहू के मालिक भी जब छोटे थे तब वे भी इसी तरह इन तस्वीरो को लिये घूमते और यही सब कहते फिरते थे। और वे ही नही, मेरे मालिक, उनके बाप और उनके पिता, सब यही सोचते और कहते थे।

मँझली रानी—आह ?

(राजमाता लम्बी साँस लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

राजमाता —बेटी, संग्रामशाह और दुर्गावती को पीढियाँ बीत गई। गिरती में सबने बढती की सोची। बीती को सोचा, भविष्य के लम्बे विचार किये, पर वर्तमान किसी ने न देखा और आज .(कुछ रुककर) आज, बेटी, बावन गढ के विजेता सग्रामशाह के कुल को बावन छदाम भी नसीब नही।

(मॅझले राजा का खेत की तरफ से प्रवेश। मझले राजा की उम्र २२, २३ वर्ष की है। रग साँवला और शरीर दुबला पतला तथा ठिगना है। एक मैली और फटी-सी धोती को छोड कर और कोई वस्त्र शरीर पर नही है। हाथ मे थोडे-से गेहूँ के दाने है, जो बहुत पतले पड़ गये हैं। उन्हे देखकर मॅझली रानी घर के अन्दर चली जाती है।)

मॅझले राजा —(गेहूँ के दानो को राजमाता के सामने पटक कर भर्राये हुए स्वर मे) माँ, सब हार में झिरी पड गई। बीज निकलना भी कठिन है।

राजमाता —(लम्बी सास लेकर) तब तब तो वसूली भी न होगो।

मॅझले राजा—वसूली वसूली माँ, लगान तो इस साल सरकार ने मुल्तवी कर दिया है ।

राजमाता —(एकदम घबडाकर खड होते हुए) मुल्तवी हो गई ?

मॅझले राजा—हाँ माँ, आज ही हुक्म आया है।

राजमाता —तो सिलापरी गाँव से जो एक सौ रुपया बचते थे, वे भी न आयेंगे ?

मॅझले राजा—इस वर्ष तो नही, माँ।

राजमाता —फिर हम लोग क्या खायेंगे, क्या पियेंगे ?

मॅझले राजा—पिनसन के सरकार एक सौ बीस रुपया साल देती है न ?

राजमाता —सात जीव एक सौ बीस रुपया साल में गुजर करेगे ? महीने में दस रुपये, एक जीव के लिए तीन पैसे रोज ?

मॅझले राजा—बडे भाई ने एक उपाय और किया है माँ।

राजमाता —(उत्सुकता से) क्या, बेटा ?

मॅझले राजा—तुम धीरज रखकर बैठो तो बताऊँ।

राजमाता —(बैठते हुए) जल्दी बता बेटा, मेरा कलेजा मुँह को आ

रहा हूँ।

मॅझले राजा—मॉ, अकाल के कारण सरकार काम खोला है न ?

राजमाता —हॉ, जहाँ कगाल काम करते है।

मॅझले राजा—पर जानती हो मॉ, उन्हे क्या मिलता है ?

राजमाता —क्या ?

मॅझले राजा—हमसे वहुत ज्यादा। चार रुपया महीना, एक-एक को दो आने रोज।

राजमाता —अच्छा !

मॅझले राजा—हम सात है। बडे भाई ने अर्जी दी है कि हम सबको अकाल के काम मे जगह दी जाय। माँ, वह अर्जी मजूर हो गई तो हममें से—एक-एक को दो-दो आने रोज, सुना, दो-दो आने रोज; सबको मिलाकर अट्ठाईस रुपया महीना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल, सुना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल मिलेगा।

(बडे राजा का खेत की ओर से प्रवेश। वे अपने भाई से मिलते-जुलते है। करीब २८ वर्ष की उम्र है। वेश-भूषा उन्हीं के सदृश है। आकर राजमाता के पास बैठ जाते है।)

राजमाता —बेटा, मँझला कहता था कि तूने सरकार को एक अर्जी दी है ?

बड़े राजा —(लम्बी सास लेकर) हाँ, दी थी माँ !

राजमाता —(उत्सुकता से) फिर क्या हुआ बेटा, मजूर हो गई ?

बड़े राजा —नहीं।

मॅझले राजा—नहीं हुई, तो क्या हम कगालो से भी वदतर है।

बडे राजा —इसीलिए तो नहीं हुई कि हम कगालो से कहीं बढकर है।

राजमाता —बेटा, तेरी वात समझ में नहीं आती।

बडे राजा —माँ, हमें पेनशिन मिलती है, हम महाराजाधिराज राज-

राजेश्वर सग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं। हमारी बडी इज्जत है। हमारा बडा मान है। हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो, पर हमें कगालो की रोजनदारी, दो आना रोज, कैसे मिल सकती है ? हमारी भर्ती कगालो मे कैसे की जा सकती है ?

(बडे राजा ठठाकर हँसते है और लगातार हँसते रहते हैं। राजमाता के आँसू बहते है और मँझले राजा उद्विग्नता से बड़े राजा की ओर देखते है।)

यवनिका-पतन

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रेमीजी मध्य भारत के निवासी हैं। आपका जन्म ग्वालियर में हुआ। अधिकतर लाहौर रहे। वहां से बम्बई सिनेमा-क्षेत्र मे चले गये। आजकल इन्दौर मे है। स्वतन्त्र रूप से लेखन का काम करते है।

नाटककार होने से पूर्व प्रेमीजी कवि है इसलिये आपके नाटको में कवि का आदर्शवाद है पर आपने जहा कोमलता के गीत गाये है वहाँ विद्रोह का स्वर भी उठाया है। वैसे आप गान्धी-युग की भावना के प्रतिनिधि है।

प्रेमीजी की भाषा पुष्ट और काव्यमय है।

आपने अधिकतर ऐतिहासिक नाटक लिखे है पर एकांकियो के क्षेत्र में आपने सामाजिक समस्याओ पर भी कलम उठाई है। आप कुशल सम्पादक और प्रकाशक भी रहे हैं।

मालव-प्रेम

●

पात्र-परिचय

जयदेव : मालवगण का सेनापति।
विजया जयदेव की कुमारी बहन।
श्रीपाल विजया का प्रेमी।

स्थान--मालवदेश। काल--विक्रमी सवत् के २५ वर्ष पूर्व।

(विक्रमी संवत् के प्रारम्भ होने के लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल। चम्बल-तट का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ, विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्वल गौर वर्ण, शरीर सुगठित, लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप। आखो मे आकर्षण के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हडपन को व्यक्त करने वाला। सिर से उत्तरीय का पहलू खिसक भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आसपास लिपटा पड़ा है। लम्बे बाल वायु मे लहरा रहे है।)

विजया—(गाना)

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर ?
जब नयन मैं मूदती, वह
छवि दिखा मुझको लुभाता।
जब बढाती हाथ तब
कुछ भी नही है हाथ आता।
धूल में मिलते अचानक
स्वप्न होकर चूर।
जो निकट इतना वही है
हाय, कितनी दूर !
जो सज्जन बन 'नयन-तारा'
लोचनो मे है समाया।
वह गगन का चाद होकर
दूर से ही मुसकराया।

इसलिए थमता नहीं
आसुओं का पूर।
जो निकट इतना, वही
हाय, कितनी दूर!
पालने में श्वास के है
हर घडी झूला झुलाया।
क्यो न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया।
मैं उसी को प्यार करने
के लिए मजबूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर?

(विजया गीत गाने मे तल्लीन है। श्रीपाल आकर उसकी नजर बचाकर उसके पास खड़ा रहता है। श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है। उसका वेश योद्धा का है। कमर मे तलवार, हाथ मे धनुष, कन्धे पर पीछे की ओर तरकश। वय लगभग २५ वर्ष)

श्रीपाल—विजया!

विजया—(गाना बन्द करके खडी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई।) तुम बडे अशिष्ट हो, श्रीपाल!

श्रीपाल—ऐसे कोमल कठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नही देते, विजया!

विजया—तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो?

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या, विजया?

विजया—अपमान तो नही किया।

श्रीपाल—फिर?

विजया—यहा एकात में मुझे अस्त-व्यस्त भेष में देर तक चुपचाप खड़े देखते रहना

श्रीपाल—मै तुम्हे जीवन-भर देखना चाहता हूँ, विजया !

विजया—(किंचित् लज्जा-मिश्रित क्रोध से) किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चाद तुम्हे इस समय देख रहा है।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हा, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हे पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हे पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

विजया—उधर देखते हो, श्रीपाल ! कही वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल में जल बढ गया है। धारा के दोनो ओर चट्टानें है। जल को फैलने को स्थान नही मिल रहा। वह कितना जोर कर रहा है ! कितने वेग से आगे बढ रहा है !

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच में इससे भी बडी चट्टाने है, विजया !

विजया—कौन-सी चट्टानें ?

श्रीपाल—तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मै एक साधारण किसान का पुत्र हू और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति की कन्या हो। आकाश की तारिका की ओर पृथिवी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी कैसे हाथ बढा सकता है ?

विजया—यदि यह तारिका आकाश से उतर कर तुम्हारी गोद में आ गिरे तो ?

श्रीपाल—मै उसे स्वीकार नही करूगा।

विजया—क्यो ?

श्रीपाल—मै कृपा का दान नही चाहता।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो ? डाका डालना तो कायरता नही है ?

श्रीपाल—मै इतना छोटा नही बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज

की चोरी करनी पडे ।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला ।

विजया—किससे ।

श्रीपाल—तुम्हारे भाई से !

विजया—अच्छा तो इसलिए तुमने शस्त्र पकडे है ?

श्रीपाल—जो हल पकडना जानता है वह शस्त्र पकडना भी जान सकता है ।

विजया—लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाये तब न ?

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालो—सृष्टि के चिरतन भाव-प्रेम का अपमान करने वालो के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा । जाता हू विजया ! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ ।

(प्रणाम करता है ।)

विजया—तुम जा तो रहे हो, श्रीपाल ! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे ?

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्ग-दर्शक है ।

(श्रीपाल का प्रस्थान)

विजया—(श्रीपाल की ओर देखती हुई) विक्षिप्त युवक !

(विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खडी उसी ओर देखती रहती है जिस ओर श्रीपाल गया है । फिर एक लम्बी सास लेकर शिला पर बैठ जाती है । कुछ क्षण विचार-मग्न रहकर वही गीत गाने लगती है । गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है । जयदेव भी गौरवर्ण, बलिष्ट शरीर, बड़ी आखो और रोबदार चेहरे वाला नवयुवक है । सैनिक वेश-भूषा । कपड़ो से उसका सुसम्पन्न होना प्रकट होता है ।)

जयदेव—(विजया के कन्धे पर हाथ रखकर) विजया !

विजया—(चौंककर) ओह, भैया !

जयदेव—चौंक क्यों उठी, बहन !

विजया—मैं डर गई थी !

जयदेव—मालव-कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नही डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखों से नहीं डरती। मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नही डरती। हिंसा से मैं लड सकती हूँ।

जयदेव—फिर डरती किस से हो, लड किससे नही सकती !

विजया—मनुष्य के प्रेम से। (दीन स्वर में) भैया !

जयदेव—(विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए) क्या बात है, विजया ?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नही पा सकती। प्राणों में आठों पहर ज्वाला जलती है। तुम्हारी वंश-गौरव की दीवार मुझे रोक नही सकती। मैं विद्रोह करूंगी।

जयदेव—किससे ?

विजया—तुम्हारे अभिमान से। मेरे भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से !

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी ?

विजया—हां।

जयदेव—जीत सकोगी ?

विजया—अवश्य !

जयदेव—कैसे ?

विजया—अपनी बलि देकर। इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव-रक्त प्रवाहित है, जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश में जाने से रोकता है—चम्बल के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके।

जयदेव—बहन, तुझे हो क्या गया है ?

विजया—तुम तो सब जानते हो, भैया !

जयदेव—यहाँ श्रीपाल आया था ?

विजया—हां ।

जयदेव—तभी तुम इतनी चचल हो उठी हो ! विजया, तुम्हे एक काम करना पडेगा ।

विजया—क्या ?

जयदेव—मालव-भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए ।

विजया—मालव-भूमि को या तुम्हे ?

जयदेव—मुझे नही मालव-भूमि को ।

विजया—लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है मालव-भूमि से नही !

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है ।

विजया—मालव-भूमि को या मालव-गण को ?

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तव क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव पर !

जयदेव—हा, जिन शको ने सिध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है उन्हे श्रीपाल ने मालवा पर आक्रमण करने को आमत्रित किया है ।

विजया—तुम लोगो का अभिमान अपने ही देश में देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है । तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खीच ले गई है ।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत के अग-रक्षक वनकर आततायियो – देश मे आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान की विश्वविजयी यूनानी सेना को हजारो प्राणो की वाजी लगा कर वापिस लौट जाने को वाध्य किया उसे क्यो न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एवं वल-विक्रम पर अभिमान क्यो न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नही है, क्या वह मनुष्य ही नही है ?

कार्य-विभाजन नीच-ऊच की दीवारें क्यो खडी करे ?

जयदेव—यह इन बातो पर विचार करने का समय नही है ।

विजया—एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नही कर सकोगे ?

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दो मे से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनो में से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बडा पतन है !

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोटना ही होगा ! श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पर्वतो से परिचित है । शक सैन्य-सख्या मे हमसे अधिक है । उनके पास अपार अश्वारोहिणी दल है, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित है । यदि उन्हे इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय तो परिणाम हमारे लिए भयकर है । सोचो विजया, उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—तो तुम देश के महत्व को नही समझी । तुम्हारे पिता तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढियो ने इस भूमि की रक्षा में अपना रक्त सीचा है, बहन ! कितनी बहनो ने अपने भाइयो को रणभूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियो ने यौवन के प्रभात काल में पतियो को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है—यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नही है यह देश का प्रश्न है । बोल बहन, तू क्या कहती है ?

(विजया चुप रहती है)

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच ! तू मालव-कन्या है, विजया ! मैं अभी आता हूँ ।

(जयदेव का प्रस्थान । विजया हतबुद्धि-सी खडी रहती है । फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है । श्रीपाल प्रवेश

करता है।)

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आगए, नही तो मुझे तुम्हारे पास जाना पडता !

श्रीपाल—हा, मैं आ गया हू। मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हे अपने साथ ले जाना चाहता हू।

विजया—लेकिन श्रीपाल मैंने निश्चय बदल डाला है।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोडना होगा ?

श्रीपाल—फिर तुम मेरे पास क्यो आना चाहती थी !

विजया—हम बचपन में एक साथ खेले हैं। अब जीवन का अन्तिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हू, बोलो। खेलोगे श्रीपाल !

श्रीपाल—अवश्य, विजया !

विजया—तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथो को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दू !

श्रीपाल—क्यो ?

विजया—आख-मिचौनी मे आँखे बन्द करते हैं, लेकिन यह नए प्रकार का खेल है। इसमे हाथ बाँधने पडते है। लाओ, हाथ बढाओ !

(श्रीपाल हाथ बढाता है, विजया उसके हाथ खूब कस-कर बाँध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।)

श्रीपाल—(जयदेव को देखे बिना ही) अब आगे ?

विजया—आगे का खेल मेरे भैया खेलेगे। (जयदेव की ओर उगली उठाती है।)

श्रीपाल—विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना भी नही थी !

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देश-

द्रोह से बचा लिया।

जयदेव—(श्रीपाल से) तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो।

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है!

श्रीपाल—जयदेव तुम वीर हो। साहस और पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मानव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे वन्धन मे बाधना पसन्द करते हो?

विजया—(श्रीपाल से) प्रियतम, मै अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हू। (गले से हार उतार कर पहनाती हुई) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयवर है। मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृषक-कुमार श्रीपाल को मै वरमाला पहनाती हू। मै तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बधे हुए है विजया! मै तुम्हे कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणो की रज मुझे मिल सकती है? मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

(चरण छूती है।)

★

श्री सत्येन्द्र शरत

श्री शरत नई पीढी के उदीयमान लेखक हैं । देहरादून ज़िले के भगवन्तपुर गांव के निवासी हैं। जन्म १० अप्रेल १६२६ को अमरावती (बरार) मे हुआ तथा प्रारम्भिक शिक्षा नागपुर मे। फिर देहरादून और प्रयाग में पढ़े । १६४६ मे वहीं से एम० ए० किया । टेलीफोन आपरेटर, क्लर्क, सम्पादक रहकर अब बम्बई फिल्म-जगत मे काम कर रहे हैं।

शरत कहानीकार, रेखाचित्र-लेखक तथा उपन्यासकार भी है। रेडियो-एकाकी भी लिखे हैं।

शरत का जीवन संघर्षों से निरंतर जूझते रहने वाले व्यक्ति का जीवन है। वही जीवन उनकी कला मे उतर आया है। द्वन्द्व, विद्रोह, दार्शनिकता और उन सबके ऊपर एक अमर आशावाद—ये सब शरत कला के तत्व हैं। जीवन का दर्द लिये इनका यथार्थवाद निखरता आ रहा है।

शैली मे गति है और भाषा मे प्रवाह। शरत से बहुत आशाये हैं।

शोहदा

●

पात्र-परिचय

मालिक	:	होटल का मालिक
आगंतुक नवयुवक	:	दो हत्यारे
पुलिस इन्स्पेक्टर	:	

(शहर के बदनाम मुहल्ले का एक गदा छोटा-सा होटल, जिसे होटल न कह बदमाशो और जुआरियो का अड्डा भी कहा जा सकता है । कोई शरीफ आदमी शहर के उस भाग मे नहीं जाता—इसी कारण होटल भी सज्जनो के सहवास से वचित ही रहता है ।

समय—एक उदास शाम के छः बजे के लगभग । कमरे के बीच मे गोल मेज पर पाँच-छः जुआरी बैठे हैं । जोरो से ताश हो रहा है । वे लोग आवाजे कर रहे हैं—'छोडना नहीं', 'चलो-चलो', 'अच्छा, शो करो', 'अबे सिर्फ दुअन्नी, चवन्नी रख चवन्नी', आदि-आदि ।

होटल का मालिक कमरे के उत्तरी कोने मे—प्रमुख दरवाज़े के पास—कुर्सी पर बैठा है । उसके सामने एक छोटी-सी मेज है । मेज पर टूटी कलम, सूखी दावात और एक घंटी रखी है । वह उचक कर खेल देख रहा है । प्रमुख दरवाजा बन्द है ।

सहसा प्रमुख द्वार पर बाहर से खटखटाहट होती है । यह आवाज मालिक को चौका देती है और खिलाडियो की तन्मयता मे बाधा उपस्थित करती है ।)

मालिक —(भीत कण्ठ से) कौन ?

आगंतुक —(जिसकी आवाज भर सुनाई दे रही है) मैं हूं एक ग्राहक । जरा जल्दी दरवाजा खोलो—जल्दी ऽऽऽ

(मालिक खिलाड़ियो की ओर अपना पेटेंट संकेत करता है । वे झटपट ताश छिपा लेते है और निश्चिन्त भाव से बैठ जाते है । मालिक बीडी सुलगाता है और आगे बढ दरवाजा खोलता है ।

एक ढलते-से युवक का प्रवेश । कमीज, धोती और फटे-से कोट मे । दाढी बढी हुई । वस्त्र और चेहरा बतला रहे हैं कि वह निर्धनता का सताया हुआ

फटक सकता—जी हाँ। मजाक न समझिये जनाब, (सिर हिलाता हुआ) यह छेदालाल का होटल है—अजी होटल क्या, पनाहगाह है पनाहगाह। यहाँ सज्जन लोग ही पनाह लेते है। आते है और चले जाते है। अपने काम से काम–किसी से न लेना, न देना।

आगंतुक —(जिसे ये बाते व्यर्थ जान पड रही है) मगर आप मुझे कही छिपा दीजिये न ! पुलिसवाले मेरे पीछे लगे हुए थे, शायद वे यहाँ भी आ जायें।

मालिक —(साहसी बनता हुआ) अजी आने भी दो। मै कोई डरता हूँ उनसे ! सोलह साल से होटल चला रखा है मैने—जी हाँ !

आगंतुक —लेकिन मै तो उनसे डरता हूँ। तीन दिन से वे मेरे पीछे है। अबतक तो मैने अपने आप को उनके हाथ नही आने दिया है, पर अब दीखता है मै उनकी पकड में आजाऊँगा। वे मेरे हथकडी भर देंगे।

मालिक —(कुछ आश्चर्य से) ऐसा ! तीन दिन से पीछा कर रहे है ! (अचानक) मगर हाँ, वे तुम्हारा पीछा क्यो कर रहे है ? क्या किया है तुमने ?

आगंतुक —(घबराकर) कुछ नही .कुछ भी नही। मै . मैने तो

मालिक —तुमने तो कुछ नही किया है, यह तो पुलिसवालो को जानना चाहिये। मुझे तो जानना चाहिये कि तुमने किया क्या ! क्योकि मै पुलिस नही हूँ।

आगंतुक —(चुप है—जैसे सोच रहा है, कहे या न कहे)

मालिक —कही चोरी करके आये हो ? (उँगलिया कैंची की तरह चलाकर) किसी की जेव कतर के ?

आगंतुक —(वल देता हुआ) नही।

है। घबराई मुद्रा बता रही है कि वह किसी वस्तु से भय खा रहा है। दोनो हाथ कोट की जेब में हैं। वह बीच मे ठिठक कर खडा हो जाता है। मालिक आहिस्ता से दरवाजा बन्द कर लौटता है।)

मालिक —(जुआरियो से) सज्जनो, बेहतर हो आप अन्दर के कमरे मे तशरीफ ले जायें। आप लोगो की चाय वही आ जायगी।

(खिलाडियो का खीसे निपोरते हुए तथा विचित्र चेहरे बनाते हुए दूसरे द्वार से अदर प्रस्थान।)

मालिक —(आगतुक की ओर मुड) मेरे नये मेहमान, बैठिये। कहिये क्या हुकुम है ?

आगंतुक —(जिसकी घबराहट अबतक दूर नही हुई है) बात यह है कि (आपानी घडी की भाँति सहसा रुक जाता है)

मालिक —कहिये-कहिये, रुकते क्यो है ?

आगंतुक —नही-नही। दरअसल में

मालिक —अरे साहब आप घबराते क्यो है ? इस तरह काँपिये मत और बतलाइये कि बात क्या है ? क्यो आप इतने परेशान है ?

आगंतुक —(कुछ साहस बाँध) मै मेरे पीछे पुलिस लगी हुई है। मै अपने को बचाना चाहता हू। मैने कुछ नही किया है...

मालिक —हाँ-हाँ, आपने कुछ नही किया है। मै कब कहता हूँ कि आपने कुछ किया है।

आगंतुक —(कुछ सतोष से) हाँ। आप...

मालिक —(बात काटकर) फिक्र न करें। आप यहाँ मजे से बैठ सकते है। यहाँ पुलिस क्या, पुलिस का बाप भी नही

फटक सकता—जी हाँ। मजाक न समझिये जनाब, (सिर हिलाता हुआ) यह छेदालाल का होटल है—अजी होटल क्या, पनाहगाह है पनाहगाह। यहाँ सज्जन लोग ही पनाह लेते है। आते है और चले जाते है। अपने काम से काम–किसी से न लेना, न देना।

आगंतुक —(जिसे ये बाते व्यर्थ जान पड रही है) मगर आप मुझे कही छिपा दीजिये न ! पुलिसवाले मेरे पीछे लगे हुए थे, शायद वे यहाँ भी आ जायें।

मालिक —(साहसी बनता हुआ) अजी आने भी दो। मै कोई डरता हूँ उनसे ! सोलह साल से होटल चला रखा है मैने—जी हाँ !

आगंतुक —लेकिन मै तो उनसे डरता हूँ। तीन दिन से वे मेरे पीछे है। अबतक तो मैने अपने आप को उनके हाथ नही आने दिया है, पर अब दीखता है मै उनकी पकड में आजाऊँगा। वे मेरे हथकडी भर देंगे।

मालिक —(कुछ आश्चर्य से) ऐसा ! तीन दिन से पीछा कर रहे है ! (अचानक) मगर हाँ, वे तुम्हारा पीछा क्यो कर रहे है ? क्या किया है तुमने ?

आगंतुक —(घबराकर) कुछ नही कुछ भी नही। मै . मैने तो

मालिक —तुमने तो कुछ नही किया है, यह तो पुलिसवालो को जानना चाहिये। मुझे तो जानना चाहिये कि तुमने किया क्या ! क्योकि मै पुलिस नही हूँ।

आगंतुक —(चुप है—जैसे सोच रहा है, कहे या न कहे)

मालिक —कही चोरी करके आये हो ? (उँगलिया कैंची की तरह चलाकर) किसी की जेब कतर के ?

आगंतुक —(बल देता हुआ) नही।

मालिक —तो फिर ! इससे ज्यादा की हिम्मत तो तुम्हारे अंदर दीखती नहीं। (रुककर) देखो, सही-सही बात बता दो। मुझसे उड़ने की कोशिश करने की जरूरत नहीं।

आगंतुक —(रुक-रुक कर) मैं ...दरअस्ल मैं मैं ..(एकदम साहसी बनकर) मैं खून करके आया हूँ।

मालिक —(जैसे आकाश तिरछा हो गया हो) खून !

आगंतुक —(खामोश है)

मालिक —तु तु . तुम खून करके आये हो ! तुमने खून किया है ? मुझे ताज्जुब हो रहा है। तुम्हारे जैसा आदमी भी खून कर सकता है ?

आगंतुक —(कोई उत्तर नहीं)

मालिक —(जैसे अपनी कही हुई बातों का स्वयं उत्तर ढूँढ रहा हो) हो सकता है—मैं मानता हूँ। दुनिया में आदमी क्या नहीं कर सकता ! खून भी कर सकता है। तुम भी खून कर सकते हो। लेकिन मेरे खयाल से तुमने अपने शिकार के सामने पिस्तौल का घोडा दबाया होगा !

आगंतुक —('हाँ'—सूचक सिर हिलाता है)

मालिक —(सिर हिलाते हुए) हूँ, मैं जानता हूँ। छुरा भोंकने की हिम्मत मुझे तुम्हारे अन्दर नहीं दिखाई पड़ती। और गला—वह तो मर्द ही घोट सकता है—तुम्हारे जैसा नहीं। (ठहर कर) खून किसी शहर में किया है—इसी में ?

आगंतुक —(मानो शब्द उसके गले में अटक रहे हों) हाँ, इसी शहर में।

मालिक —(उसके डर का आनन्द उठाते हुए) तो तुम मानते

आसामी नहीं हो । खूनी हो--और हो भी बहुत तिकडमी । तीन दिन से इसी शहर की गलियो में यहाँ की पुलिस को झाँसा दे रहे हो, और अब शायद अँगूठा ही दिखा जाओ । लेकिन इस तरह कबतक बचोगे ? एक न एक दिन फदे में आना ही पडेगा। फिर ?

(अचानक पीछे से जुआरियो का ठहाका सुनाई पड़ता है)

मालिक —अच्छा एक बात तो बताओ । (आगतुक के निकट आकर, धीरे से) कितना रुपया हाथ आया है ?

आगतुक —रुपया ? .रुपया तो कुछ भी नही मिला है ।

मालिक —बहुत घुटे हुए हो तुम । .हा, तुम पनाह लेने यकायक मेरे होटल में कैसे आ गये ?

आगतुक —(उसे प्रसन्न करने के लिए) जी, मुझे एक आदमी ने बताया था ..

मालिक —(भौ मे बल डाल) क्या ?

आगतुक —यही कि मैं यहा जगह पा सकता हूँ—एक हफ्ता, दो हफ्ता, यानी जबतक पुलिस छानबीन कर ठडी न पड जाय ।

मालिक —(क्रोध न रोक सकने के कारण चीखते हुए) नही जनाब नही । यहाँ आप जैसे खूनी एक हफ्ता तो क्या, एक घटे के वास्ते भी पनाह नही ले सकते । यहा जगह है, हल्के आदमियो के लिए, शरीफो के लिए, जिन्हे पुलिस सिर्फ शक की वजह से ही परेशान करती है । आप तु ..तुम्हारे जैसे खतरनाक आसामियो के लिए नही, खूनियो के लिए नहीं । समझे ?

आगतुक —(दीन मुद्रा) मुझपर दया करो । मै तुम्हारे हाथ. .

मालिक —(बात काटकर) हाथ क्या हथकडियां डलवाओगे मेरे हाथो मे ? एक गुनहगार को पुलिस की निगाह से बचाना कानून की रू से जुर्म है और उसके वास्ते सजा भी मिलती है। तुम तो मेरे और पुलिस के सोलह साल के भाईचारे को बरबाद करने आये हो।

(कमरे मे खामोशी हो जाती है। अंदर जुआरियो का जोर से हँसना और शोर करना।)

मालिक —(तीखे स्वर से) सुन रहे हो जनाब। तुम्हे छिपा कर मै अपने पैरो में खुद कुल्हाडी नही मार सकता। बेहतर है, तुम जैसे आये हो, वैसे ही चले जाओ।

आगंतुक —(कॉपता हुआ) लेकिन जाऊँ कहाँ ? बाहर

मालिक —(बात काट कर) तुम भाड में जाओ। मुझसे मतलब ? इतना ही काफी समझो जो मैंने तुम्हे इतनी देर जगह दे दी और उससे ज्यादा यह कि पुलिस को बुलवा कर तुम्हे पकडवा न दिया। अब तुम जल्दी चलते बनो यहा से।

आगंतुक —(गिडगिडाते हुए) अच्छा तो थोडी देर और रहने दो—मै तुम्हारे पैर छूता हूँ—फिर मै चला जाऊगा।

मालिक —(कुछ शात होकर) अजी, तुम्हारे ही जैसे लोगो की वजह से मेरा यह शरीफ होटल बदनाम होता है। जब लोग सुनेंगे कि सारे शहर के खूनी, लफगे, शोहदे यहां इकट्ठा होते है और पुलिस यहा आकर उन्हे गिरफ्तार करती है—तो वे क्या सोचेंगे ? वे सोचेंगे—यह सज्जनो का होटल नही है। वे यहा कभी नही आयेंगे। इससे बिजनेस के साथ होटल के नाम पर भी धक्का लगता है. समझे ? क्या समझे ? . तुम नही समझे ! तुम समझ भी नही

सकते । तु तु तुम्हारे दिमाग में तो पिस्तौल और खून भरा है । तुम .

(सहसा दरवाजे पर फिर खटखटाहट होती है । आगंतुक अपने भाग्य के समान कापने लगता है । वह मालिक का हाथ पकड़ लेता है, जो उसका हाथ झटक देता है और दरवाज़ा खोलने आगे बढ जाता है। आगतुक भाग कर दूसरे दरवाजे से अदर चला जाता है।

दुर्भाग्य की भाति एक नवयुवक का प्रवेश। चेहरा सुन्दर, किन्तु तनिक विकृत, प्रशस्त ललाट, उस-पर बिखरे हुए बालो की एक लट, दीप्तिमान नेत्र—अत्यन्त गहरे पानी की तरह न जाने उनके भीतर क्या है, भौहे धनुप की भाति—जैसे ससार को चुनौती दे रही हो। चाल मे गर्व तथा अभिमान।

वह खद्दर की कमीज़ और पतलून पहने हुए है। दोनो कपडे साफ नही कहे जा सकते । कमीज का कॉलर काफी मैला दिखाई दे रहा है । दोनो हाथो के कफ के बटन टूटे हुए है ।)

नवयुवक —(कुर्सी पर बैठता हुआ) चाय—एक प्याला ।

मालिक —बहुत अच्छा । अभी लीजिये ।

नवयुवक —देखिये मिस्टर, आप यह दरवाजा बन्द करते जाइये (प्रमुख द्वार की ओर सकेत) और हाँ, चाय की ऐसी जल्दी नही है । मै एकात चाहता हूँ—बिलकुल एकात । कोई मेरी विचारधारा में बाधा न दे । (सिग्रेट सुल-गाता है और जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर देता है ।)

मालिक —(नोट लेता हुआ) जी बहुत अच्छा, (अपनी मेज से

घटी उठा कर नवयुवक के सामने रखते हुए) चाय की जरूरत पर इसे बजा दीजियेगा।

(मालिक प्रमुख द्वार बद करता है और अन्दर जाता है। पहले व्यक्ति का फिर प्रवेश। नवयुवक को देख वह भयभीत नही होता। नवयुवक इस व्यक्ति को देखता है—आखो मे आश्चर्य का भाव। पहला व्यक्ति मेज के पास आकर नवयुवक के सामने की कुर्सी पर बैठता है।)

नवयुवक —(उपेक्षा से) तुम तुम कौन हो जी ? यहाँ क्यो आये हो ?

पहला व्यक्ति —मै भी यहाँ चाय पीने ही आया हूँ।

नवयुवक —(पूर्ववत् भाव से) हूँ। (मुँह दरवाज़े की ओर कर लेता है तथा अन्यमनस्कता-पूर्वक धुँवा उडाने लगता है)

पहला व्यक्ति —क्यो, क्या किसी का इन्तजार है ?

नवयुवक —(खीजकर) हाँ, पुलिस का।

पहला व्यक्ति —(कापते-से स्वर मे) पु .पुलिस का ?

नवयुवक —(उसे भयभीत देख) हाँ, पुलिस का। लेकिन तुम इतना डर क्यो गये ? सिर्फ पुलिस के नाम से ही ? (कुछ ठहर कर) आश्चर्य की बात है। डरना मुझे चाहिये था—डर रहे हो तुम ?

पहला व्यक्ति —(कुछ साहस कर) तुम्हे ? .तुम्हे क्यो डरना चाहिये था ?

नवयुवक —क्यो मेरी करतूत ही ऐसी है।

पहला व्यक्ति —क्यो ? क्या तुमने भी किसी का खून कर दिया है ?

(अचानक अन्दर से जुआरियो के तेज ठहाके की आवाज़ आती है। नवयुवक और व्यक्ति दोनो

चौंकते है। नवयुवक पहले व्यक्ति के चेहरे तथा नेत्रो पर कडी दृष्टि डालता है, जो उस तीव्र दृष्टि को सहन न कर सकने के कारण मुँह दूसरी ओर कर लेता है।)

नवयुवक —(कुटिल मुस्कान से) मैंने किसी का खून किया है या नही, इसे रहने दो। लेकिन मै दावे के साथ कहता हूँ कि तुमने हाल में ही कोई खून किया है। बोलो सच है न ?

पहला व्यक्ति —(जो मुट्ठी के पैसे की भांति पसीने से तर हो गया है) ले लेकिन तु तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?

नवयुवक —(उसकी दशा देख अट्टहास करता है) बस ! इसी बिरते पर खून किया था ! आश्चर्य है तुमने खून कैसे कर दिया ? तुम्हारे अन्दर खून करने की हिम्मत हो कैसे गई ? खून करने के लिए दिल चाहिए, और मै देखता हूँ, तुम्हारे अन्दर दिल या हौसला नाम की चीज ही नही है। फिर किसने तुम्हारा हाथ पकड कर तुमसे छुरी चलवा दी, या पिस्तौल का घोडा दबा दिया ? (ठहर कर, घृणापूर्वक) कायर, बुज़-दिल कही के। जब तुम अभी तक कॉप रहे हो तो उस समय तुम्हारा क्या हाल हुआ होगा ? तुम्हारे जैसे के हाथ से मरते हुए तो उस व्यक्ति को भी दु.ख हुआ होगा। तुमने बेकार ही हत्या का नाम बदनाम किया है। अगर तुम्हारे हाथ खुजला रहे थे, तो तुमने कुल्हाडी से लकडी चीरना क्यो न शुरू कर दिया ? बेकार एक व्यक्ति का रक्त इन टूटे हाथो से क्यो बहाया ? बोलो बोलो न क्या सॉप सूघ गया है ? (अधिक उत्तेजना के कारण हाफने लगता है)

पहला व्यक्ति —(अवाक् दृष्टि से नवयुवक को देख रहा है, जसे उसे

समझ न पा रहा हो)

नवयुवक —(कुछ शात होकर) मनुष्य .ईश्वर की सृष्टि का कितनी सुन्दर वस्तु है ! स्वयं ईश्वर को अपनी इस रचना पर अभिमान है। ससार-रूपी उपवन मे वह एक सुन्दर पुष्प है, और तुमने (उत्तेजित होकर) तुमने व्यर्थ ही एक ऐसे सुन्दर पुष्प को मरोड दिया, एक सुन्दर खिलौने को तोड दिया, जिसे तुम सतत प्रयत्न करने पर भी नही जोड सकते, और वह भी निरर्थक ही । क्यो ? आखिर क्यो ? धिक्कार है तुमपर ..सौ-सौ लानत है तुम्हारे जैसे पर । (कदाचित अपनी उत्तेजना शात करने के लिए पतलून की जेब से शराब का अद्धा निकाल, मुँह लगा गट-गट पीने लगता है) तुमसे, अरे तुमसे, तो मै ही अच्छा हूँ ।

पहला व्यक्ति— (सविस्मय) मै जानता हूँ । पर तुम इसे क्यो पीते हो ? यह ख़राब चीज है । शरीफ आदमी इसे नही पीते ।

नवयुवक —(व्यग मुस्कान सहित) तुम जानते हो मै कौन हूँ ?

पहला व्यक्ति —(कुछ साहस कर) नही, (ठहर कर) लेकिन मेरे ख़्याल से तुम एक अच्छे आदमी हो—विद्वान और हिम्मत वाले ।

नवयुवक —(जोर से अट्टहास करता है—उसका अट्टहास खोखला है, बिल्कुल खोखला) ।

पहला व्यक्ति —(उसके चेहरे की ओर देखता हुआ) तुम ऐसा क्यो हँसते हो ? तुम्हारी यह हँसी मेरा हृदय कँपा देती है।

नवयुवक —(गम्भीरतापूर्वक) क्योकि तुमने मुझे बिल्कुल गलत समझा है ।

पहला व्यक्ति —(साश्चर्य) क्या ? तुम्हे गलत समझा है ?

नवयुवक —(सिर हिलाकर) हाँ, मै न सज्जन हूँ, न विद्वान् । मै हूँ, बदमाश, आवारा, शोहदा, जालसाज, डाकू, खूनी, फरार और सब-कुछ । मै शैतान का अवतार हूँ, दुनिया भर की बुराइयो का पुलिदा—और ऐसे आदमी में इस झूठी हिम्मत का होना आश्चर्य की बात नही है ।

पहला व्यक्ति —(जिसे विश्वास न हो रहा हो) तुम डाकू ! . तुम खूनी !...

नवयुवक —हाँ, मै खूनी, और फिर फ़रार !

पहला व्यक्ति —(साहसी बनते हुए) जब तुम भी खूनी हो, तुमने भी खून किया है तो फिर मुझे बुरा-भला क्यो कह रहे थे ?

नवयुवक —(रुचि-सी लेते हुए) उसका कारण है । मैने वीरता-पूर्वक खून किया था । पता है, मैने किसकी जान ली थी ? मैने अपने शहर के अत्याचारी कलक्टर का सिर गोली से उडा दिया था । वह पापी, बहुत ही क्रूर-हृदय और राक्षस प्रकृति का था । यद्यपि ईश्वर की सृष्टि की एक उपज को नष्ट-भ्रष्ट करने का मुझे कोई अधिकार न था, तथापि उसके जीवन के काले कारनामो ने मुझे उसकी जीवन-लीला समाप्त करने पर विवश कर दिया । (एक क्षण रुककर) उस रात उसके प्राइवेट रूम में मैने उसे उसके पाप गिनवाये । फिर उसे उसके ईश्वर को याद करने का समय भी दिया—हालाँकि उसके जैसे पापी के याद करने से ईश्वर भी उसे याद न आया होगा, ऐसा मेरा विश्वास है । एक, दो, तीन के साथ मेरे रिवाल्वर की गोलियो ने उसके भयभीत

मुख को छेद दिया। (हँसकर, हाथ झाडता हुआ) इस प्रकार उसका परलोक को पार्सल कर दिया गया, जिसकी कि अभी तक रसीद नही मिली है और न मिलेगी ही।

(अचानक पीछे से जुआरियो की गाली-गलौज की आवाज।)

पहला व्यक्ति —फिर क्या हुआ ?

नवयुवक —फिर मैं एरेस्ट कर लिया गया। फाँसी की सजा होने से पहिले ही भाग निकला और अबतक पुलिस से बचा हुआ हूँ।

पहला व्यक्ति —तुम भागे क्यो ?

नवयुवक —(मुस्कराने की नकल कर) क्योंकि इसकी आवश्यकता थी। घर पर कुछ इन्तजाम करना था, (दाँत पीस कर) कुछ गद्दारो से भी मिलना था और कुछ मोटे आसामियो से रुपया भी वसूल करना था।

पहला व्यक्ति —(दृढता से) तुम बहादुर हो।

नवयुवक —(व्यङ्ग्य मुस्कान) बहादुर . कम-से-कम मौत से मैं तुम्हारी तरह नही डरता। मैने खून किया है, इसका मुझे गर्व है। मैं जानता हूँ, इसकी सजा मुझे मौत मिलेगी। मैं हँसता हुआ फाँसी के तख्ते पर जा खडा होऊँगा। मेरे सोचे हुए सब काम पूरे हो गये है। अब तो मैं हमेशा परलोक के माइलेज गिनता रहता हूँ। किसी भी रोज मौका देख मैं अपने को पकडवा दूँगा—किसी को मेरी गिरफ्तारी का इनाम तो मिल जाएगा। लुक-छिप कर जीना, हमेशा खतरे मे रहना, चूहे-जैसी जिन्दगी से मैं नफरत करता हूँ। (ठहर कर, एक लम्बी साँस ले) और मरने मे कोई गम भी नही है मेरे

दोस्त, सिर्फ इतना सोचता हूँ कि लोग यही कहेंगे— 'अरे यह तो डाकू था, हत्यारा था, शोहदा था ।'

पहला व्यक्ति —(प्रभावित स्वर मे) लेकिन मै ऐसा नही कहूँगा । हालाँकि तुमने मुझे बहुत कोसा है, लेकिन तब भी मैंने बुरा नही माना है। मुझे दु ख है तुम उन परिस्थितियो को न जान सके जिन्होने मुझे मेरी आत्मा के विरुद्ध खून करने पर विवश किया।

नवयुवक —(व्यङ्ग्य मुस्कान) परिस्थितियाँ ? . क्या थी वे परिस्थितियाँ ?

पहला व्यक्ति —बी० ए० पास करने के बाद दो वर्ष बेकारी और गरीबी से टक्कर लेनी पडी । अकेला होता तो फिक्र न थी, लेकिन साथ में पत्नी, युवा बहन और वृद्धा माँ भी थी। बेकारी में दर-दर भटकता हुआ, काम की भीख माँगता हुआ जब मै लाला श्यामनारायण के द्वार पर पहुँचा तो उन्होने मुझे दो सौ रुपये उसी समय दिये और आठ सौ रुपये बाद मे देने का वायदा कर मेरे हाथ में पिस्तौल पकडा दी। मुझे उनके धनी नि सतान चाचा माधोनारायण की हत्या करने को कहा गया। एक बार मै काँप उठा । हत्या ! न, यह मुझसे न होगी, किन्तु भूखे और अर्ध-नग्न परिवार का करुण चित्र फिर मेरी आखो के सामने आ गया और पाँच दिन का भूखा मै, अर्धविक्षिप्त अवस्था मे हत्या करने को तैयार हो गया। मुझे कुछ याद नही, मैने क्या किया ? केवल याद है कि श्यामनारायण से बकाया रुपया माँगने पर उसने मुझे पुलिस मे देने की धमकी दी। तब मै चैतन्य हुआ और लुकता-छिपता यहाँ आ पहुँचा और तभी आप मिले।

नवयुवक —(सक्रोध) तुमने श्यामनारायण का बताया काम पूरा किया और उसने रुपया देने से इन्कार कर दिया ? (घृणापूर्वक) बुज़दिल, भीरु, कही के ! तुमने पिस्तौल उस कमीने पर क्यो न खाली कर दी ? तब खुशी-खुशी अपने को पुलिस के हवाले कर देते ?

पहला व्यक्ति —(चिन्ताजनक स्वर मे) लेकिन तब मेरे परिवार की क्या दशा होती ? मेरे साथ वे लोग भी तडप-तडप कर मर जाते !

नवयुवक —(घृणापूर्वक) और अब नही मरेंगे वे ? उनका मरना ही अच्छा है। मरना तो सिर्फ एक ही बार है, लेकिन जिन्दा रहना—वह तो हजार बार मरना है !

पहला व्यक्ति —(आश्चर्यपूर्वक) तुम तो हृदयहीन हो, अति कठोर, निर्मम (सहसा) नही-नही तुम विक्षिप्त हो ! तुम...

नवयुवक —(बात काट कर) और तुम ? तुम क्या कम विक्षिप्त हो? तुम भला-चङ्गा मस्तिष्क होते भी उसका उपयोग नही कर सकते। तुम नही जानते तुम्हे क्या करना है ? तुम स्वय नही जानते तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हें नही मालूम तुम क्या करोगे ? इसी कारण तुम दु:खी हो। तुम अपनी शक्ति को नही पहचान सकते न ? लेकिन मै सब जानता हूँ, समझता हूँ। दुनिया का कोई भी सत्य मुझसे छिपा हुआ नही है, इसी कारण मैं सुखी हूँ।

पहला व्यक्ति —क्या तुम स्वय अपनी कही हुई बातो का मतलब समझ रहे हो। मै तो नही समझ पा रहा हूँ।

नवयुवक —क्यो मिस्टर, तुमने अपनी यह कहानी इस होटल के मैनेजर को तो नही सुनाई है ?

पहला व्यक्ति —नही, लेकिन मैंने उससे कह दिया है कि मैंने खून किया है।

नवयुवक —(तेजी से) तो उससे अब कह दो कि तुमने खून नहीं किया है। कह देना कि पहले तुमने मजाक किया था, सब गलत बात कही थी। समझे ?

पहला व्यक्ति —(ध्यान न देता हुआ) मैनेजर साहब मिस्टर मैनेजर (सामने मेज पर की घटी पर हाथ मारता है, जो भद्दी तरह दो-एक बार 'किर्र-किर्र..' करके रह जाती है)

(मालिक का फुर्ती से प्रवेश। वह अत्यन्त आश्चर्य से पहले व्यक्ति को देखता है।)

मालिक —(नवयुवक से) कहिये अब ले आऊँ चाय ?

नवयुवक —(लापरवाही से) रहने दीजिये चाय। यह बतलाइये कि यहाँ पास मे कही फोन होगा—मेरा मतलब टेलि-फोन ?

मालिक —टेलिफोन ? हाँ-हा इसी मोड पर। परसराम आढती की दुकान में लगा है।

नवयुवक —अच्छा, तो ठीक है। (मनुष्य की ओर मुड) तुम यही बैठे रहना। मै अभी आता हूँ।

(नवयुवक का दरवाजा खोलकर बाहर प्रस्थान। मालिक भृकुटी चढाये, पहले व्यक्ति के सामने आकर खडा होता है।)

मालिक —क्यो जी, धरे हो अभी तक ? गये नही यहाँ से ?

पहला व्यक्ति —(चेहरे पर मुस्कराहट लाने की चेष्टा कर) अभी से चला जाऊँ, ऐसी जल्दी क्या है ? देखा नही मुझे बैठे रहने को कह गये है यह साहब। (एक क्षण रुक) हाँ देखो, तुम चाय के लिए पूछ रहे थे, मेरे लिए ले आओ।

मालिक —(व्यगपूर्वक) जी चाय ? हूँ मैंने कहा, चाय

कोतवाली में ही पीना। यहाँ चाय-वाय नही है। (ठहर कर) समझे नही ?

पहला व्यक्ति —(नकल करता हुआ) जी कोतवाली ? मैंने कहा, मुझे कोतवाली जाने की क्या जरूरत है। मैंने कुछ नही किया है। (ठहर कर) समझे नहीं ?

मालिक —(अचकचा कर) तुमने कुछ नही किया है ? लेकिन थोडी देर पहले तो तुमने कहा था कि तुम खून करके आये हो !

पहला व्यक्ति —(खडा होकर) लेकिन अब कह रहा हूँ कि मैंने कुछ नही किया है। खून करने की बात गलत थी। तुम्हारी जाँच की जा रही थी।

मालिक —(आप-ही-आप) जाँच की जा रही थी ? . लेकिन किस बात की ? कुछ समझ में नही आता। (रुक कर) यह जरूर कोई सी० आई० डी० वाला है।

(मालिक हताश भाव से कुर्सी पर बैठ जाता है। पहला व्यक्ति चुपचाप खड़ा हुआ उसे देखता रहता है। निस्तब्धता छा जाती है। उसे भेदती हुई यकायक अंदर से जुआरियों के ठहाके की आवाज आती है। मालिक चौंकता है। पहला व्यक्ति चौंकता है। दोनो एक दूसरे की ओर देखते है।

सहसा बाहर के दरवाजे के खड़कने की आवाज। नवयुवक का अदर प्रवेश।)

नवयुवक —(हाथ झाड़ता हुआ) सब काम पूरा हो गया है। कुछ बाकी नही रहा। (पहले व्यक्ति से) हाँ, अब तुम अपना यह रुपया सँभालो।

पहला व्यक्ति —(जैसे आकाश से गिरा हो) रुपया ?

नवयुवक —(उसे आगे बोलने का अवसर न दे) हाँ रुपया, जो मैंने

अभी तुमसे लिया था, (जेब से नोट निकाल) लो गिन लो। पूरे है तीन सौ चालीस या बयालीस।

(नवयुवक पहले व्यक्ति की जेब मे नोट ठूँसता है। साथ ही पहले व्यक्ति और मालिक की अज्ञानता मे उनसे छिपा कर पहले व्यक्ति की जेब से रिवाल्वर निकाल कर अपनी जेब मे डाल लेता है।

फिर खामोशी छा जाती है और कुछ देर रहती है।)

पहला व्यक्ति —(सहसा, हताश स्वर मे) मै इन गुत्थियो को नही सुलझा पा रहा हूँ।

नवयुवक —(गंभीरतापूर्वक) तुम तो मूर्ख हो। दिमाग के होते हुए भी उसका उपयोग नही कर सकते। लेकिन देखो, अब इस तरह काम न चलेगा। दुनिया में सीधे बन के रहोगे तो मुँह की खाओगे। तुम अपने दिमाग से काम लेना सीखो। अपने को पहचानो। जिंदगी के रास्ते पर लडखडाते और ठोकरें खाते हुए चलना

(सहसा कुछ आदमियो के भारी पद-चापो और बूटो की चर्र-मर्र की आवाज सुनाई देती है जो दूर से जल्दी ही नजदीक-नजदीक होती जाती है। दरवाजे पर एक निर्दय खटखटाहट। मालिक कुर्सी पर उछल-सा पडता है।)

मालिक —(आशकित कॉपते स्वर मे) कौन ?

बाहरी आवाज—(रुखाई से) दरवाजा खोलो ?

नवयुवक —(निर्विकार भाव से) दरवाजा खोल दो। पुलिस होगी।

(मालिक दरवाजा खोलने आगे बढता है।)

नवयुवक —(फुर्ती से, जेब से रिवाल्वर निकाल, पहले व्यक्ति की ओर मुड) खबरदार जो पुलिस को एक शब्द भी

कहा। बस, खामोश रहना। कुछ न होगा। इतना घबराओ मत। (रिवाल्वर फिर जेब मे डाल लेता है)

(पुलिस इंस्पेक्टर और चार-पाँच सिपाहियो का धडाके से प्रवेश। उनका कमरे मे इधर-उधर नजरें दौडाना। एक का झुककर मेज के नीचे देखना।)

नवयुवक —(भयभीत हो, मनुष्य को संबोधित कर) पुलिस! धोखा! ज़बरदस्त धोखा. .आखिर तुमने पुलिस बुलवा कर मुझे पकडवा ही दिया।

पु० इंसपेक्टर —(आगे बढ पहचानने की चेष्टा करता हुआ) कौन, मिस्टर वनफूल ?—हमारे फरार आसामी, जिनकी इतने दिनसे तलाश थी, और जिनकी गिरफ्तारी के लिए दो हजार रुपये का इनाम है।

मालिक —(चौंक कर, स्वत.) दो हजार!...बाप रे!

नवयुवक —(आग्नेय नेत्रो से मनुष्य को घूरता हुआ, मानो उसे भस्म कर देगा) ट्रैटर! कमीना! आखिर दो हजार के इनाम के लालच में आ ही गया न! मुझे बातो में उलझा अपने आप फोन कर पुलिस मँगवा ली! क्यो अब तो तसल्ली हो गई होगी ?...आखिर दो हजार रुपया जो इनाम मिलेगा—बडी बहादुरी से एक फ़रार इनामी आसामी को गिरफ्तार करवाया है।

पु० इंसपेक्टर—(पहले व्यक्ति से) अच्छा, तो आपने ही फोन कर हमें इत्तला दी है और गिरफ्तारी में मदद की है ?

पहला व्यक्ति —(खामोश—भौचक-सा नवयुवक की ओर देखता है)

नवयुवक —(दाँत पीस) अब बोलता क्यो नहीं ? क्या मुँह में ताले ठोक दिये हैं किसी ने ? या इनाम की खुशी में बोल ही नही फूटता ?

पु० इंसपेक्टर —(पहले व्यक्ति से) हम आपके शुक्रगुजार हैं। आपने

गवर्नमेंट के एक बहुत बड़े दुश्मन को पकड़वाया है। आप जानते हैं, इन्होंने अपने शहर के कलक्टर का खून किया था। यही इनका जुर्म है।

नवयुवक —(फीकी हसी हस कर) मिस्टर इसपेक्टर, मेरे जुर्मों को आप नही जानते। मैंने लाला माधोनारायण का खून भी किया है—परसो रात में। आश्चर्य न कीजिये। (जेब से रिवाल्वर निकालता हुआ) इसी रिवाल्वर से। डरिये मत, डरिये मत। आप इसका शिकार नही हो सकते। (खोल कर देखता हुआ) यह शायद आपके दिमाग ही की तरह खाली है (इसपेक्टर को पकड़ा देता है)

पु० इंसपेक्टर —(डरते-डरते रिवाल्वर पकड़ कर) शौकत, मिस्टर वनफूल के हथकड़ी लगाओ।

(एक पुलिस का सिपाही आगे बढकर नवयुवक के हथकड़ी भरता है।)

पु० इंसपेक्टर —(रिवाल्वर उलट-पुलट कर देखता हुआ) ठीक है। मैं पहले से कयास किए था कि यह किसी पुराने पापी की ही हरकत है। नही तो मजाल है किसी की, कि खून कर इस तरह तीन दिन मेरी नजरो से बचा रह जाय! उड़ती चिड़िया के पर गिनता हूँ मैं!

नवयुवक —(मुस्करा कर) अपनी तारीफ पुलिस स्टेशन के लिए थोड़ी बकाया रख छोड़िये। (रुककर) अब देर करने से फायदा? चलिये। मैं तैयार हूँ।

पु० इंसपेक्टर —चलिए। (पहले व्यक्ति से) आप मेहरबानी कर कल पुलिस स्टेशन पर मिलिए। वही बातें होगी। (मालिक की ओर मुड़) क्यो म्याँ छेदालाल, तुम फिर ऐसे

खतरनाक शरीफजादो को पनाह देने लग गए हो। शामत आ गई है, दीखती है तुम्हारी। (सिपाहियो से) चलो जी। (चलने को उद्यत होना)

मालिक —(झुक कर) सलाम सरकार।

नवयुवक —(पहले व्यक्ति से) अच्छा विदा!

(पुलिस और नवयुवक चलते है तथा बाहर निकल जाते हैं। उनके कदमो की भारी आवाज कुछ देर तक सुनाई पडती है, जो धीरे-धीरे दूर होती चली जाती है। एक बेतुका-सा सन्नाटा हो जाता है और कमरे मे एक अजीब ही मनहूसियत छाने लगती है।)

मालिक —(परेशानी से) यह सब क्या हो गया—स्टेज पर ड्रामे की तरह? मेरी समझ मे कुछ नही आया। (ठहर कर, पहले व्यक्ति से) मेहरबान, मैं आपसे अपने बर्ताव की माफी चाहता हूँ। मैं आपको गलत समझा था। असल मे ऐसे लोगो की वजह से होटल बदनाम होता है। उफ!. .कितना खतरनाक था यह आदमी। बाप रे!. डबल खूनी, आवारा, फरार।. (दृढ विश्वास से) पक्का शोहदा था यह!

पहला व्यक्ति —(जिसकी आखो मे अनायास ही आसू भर आये है, रुधे गले से) हाँ, पक्का शोहदा था यह!

(परदा गिरता है)

☆

विष्णु प्रभाकर

आपका जन्म १२ जून १६१२ को मुजफ्फरनगर जिले के मीरापुर कस्बे मे हुआ था। लेकिन बचपन मे ही पजाब चले जाने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा वहीं हुई। सन् १६४४ तक एक सरकारी फार्म पर नौकरी करते रहे। उसके बाद दिल्ली आ बसे और स्वतंत्र रूप से लेखन का काम करने लगे।

आप नाटककार होने के अतिरिक्त उपन्यास लेखक, कथाकार तथा रेखा-चित्र-प्रणेता भी है। आपका रचनाकाल तो सन् १६३१ से शुरू होता है, पर आपका सबसे पहला नाटक 'हत्या के बाद' सन् १६३६ मे लिखा गया था और 'हस' मे प्रकाशित हुआ था। "इधर आपकी कला मे अभूतपूर्व निखार आ गया है। यथार्थ की अपेक्षा आप आदर्शोन्मुख है। मानव-प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके उनमे आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है।"—(उपेन्द्रनाथ 'अश्क') "आपके साहित्य की मूलात्मा आपका सहज मानव-गुण है।"—(डा० नगेन्द्र)

आपकी भाषा पर अधिकार है और आपकी शैली मे गति है। रेडियो नाटको के क्षेत्र मे आपको विशेष सफलता मिली है।

रक्त-चन्दन

❁

पात्र-परिचय

पहला कबायली	
दूसरा कबायली	
तीसरा कबायली	
राधाकृष्ण	: काश्मीर का एक हिन्दू
गुल	: काश्मीर का एक मुसलमान । राष्ट्रीय कान्फ्रेस का सैनिक
गौरी	: राधाकृष्ण की लड़की
सोमनाथ सादिक	: किसान के वेश मे दो काश्मीरी

समय.. युद्धकालीन काश्मीर १९४७ का अक्तूबर मास

[स्टेज पर हल्का प्रकाश चारो ओर टूटे मकानो का ढेर ..ईंट, पत्थर, लकडी के दरवाजे और सामान सामने एक मकान की दीवार है जिसका दरवाजा बन्द है। खिडकी कई बार आहिस्ता-आहिस्ता खुलती है और बन्द होती है। उसी के साथ प्रकाश घटता-बढता है। प्रकाश के साथ स्वर भी उभरते है और उनके सहारे कुछ शक्ले भी उभरती है। कही दूर खटका होता है, गोली चलती है और खिड़की पर से मूर्तिया भूत की तरह गायब हो जाती हैं। कुछ क्षण सन्नाटा रहता है। फिर दरवाजा खुलता है और तीन मूर्तिया धीरे-धीरे बाहर आती है। तीनो पुरुष है। वे चारो ओर देखते हैं फिर धीरे-धीरे बाते करते हैं।]

गुल —अभी कोई डर नही है। मैंने उन्हे ऐसा उल्लू बनाया है कि वे कम-से-कम दो-तीन घण्टे इधर आने की बात नही सोच सकते। साले कहीं औरतो की तलाश में घूम रहे होगे।

सोमनाथ —तुम ठीक कहते हो। वे कुछ नही चाहते, न ज़र, न जमीन। वे तो औरत चाहते है औरत। उन्होंने उन्होने (स्वर भर्रा जाता है।)

गुल —हिम्मत सोमनाथ! हिम्मत से काम लो। (उसे हाथ से पकडता है।)

सोमनाथ —मै समझता हूँ, गुल! सब कुछ समझता हूँ। सब कुछ देखता हूँ लेकिन मै क्या करूँ? रह-रह कर मेरी बीवी का चेहरा मेरी आखो में उभर आता है। रह-रह कर जैसे वह मेरे कानो में कह जाती है. 'जिंदगी भर तुमने मेरी रक्षा करने की कसम खाई थी; लेकिन उस दिन तुम्हारे देखते-देखते वे जालिम

लुटेरे मुझे उठा कर ले गए ।' (भावावेग) आह गुल ! (अवकाश) वह देखो वह मेरी बीवी मुझे देख रही है । उसकी वे आखें वे आखें

गुल —वे आँखें ! वे आँखे ही तुम्हारी ताकत बनेंगी, सोमनाथ ! वे तुम्हारी बीवी की आँखें नही है । वे तुम्हारे वतन की आँखें है । तुम्हारे खूबसूरत वतन की खूबसूरत आँखें, जो आज तुम्हे खून से खेलने को पुकार रही है ।

सादिक —खून से नही जिन्दगी से कहो, गुल । आज मेरे वतन की जिन्दगी मोर्चे पर डटी हुई है ।

सोमनाथ —और उसी जिन्दगी को ये लुटेरे पैरो तले रौंद डालना चाहते है ।

सादिक —लेकिन जिन्दगी उन्हे रौंद डालेगी, सोमनाथ । वह साँप की तरह है जो ठुकराने वाले को डस कर ही छोडता है ।

सोमनाथ —मुझे यकीन है । मुझे यकीन है । मै डरता नही । तुम लोग अपने मन में कुछ और न सोच बैठना । मै पूरी तरह तैयार हूँ ।

गुल —मै जानता हूँ, सोमनाथ ! तुम्हे डरने की कोई जरूरत नही है । जो वतन की राह में मिट जाते है आने वाली नस्लें उनके कदमो के निशानो को चूमा करती है ।

सादिक —और तवारीख उनकी शोहरत का डंका पीटती है ।

सोमनाथ —मै यह सबकुछ नही जानता । मै तो इतना ही जानता हूँ कि यह आजादी की लडाई है । मेरी बीवी उसके लिए मिट गई । मै भी मिट जाना चाहता हूँ , लेकिन उन्हे यह बताकर कि किसी को

आजादी पर हमला करना अपनी जिन्दगी पर हमला करना है ।

सादिक़ —और अपनी जिन्दगी पर हमला करने का मतलब है मौत !

गुल —बेशक उन्हे मौत मिलेगी, एक बुजदिल इन्सान की मौत ।

सोमनाथ —बेशक वे बुजदिल है । हमलावर हमेशा बुजदिल होता है ।

(उन्हें जोश आ जाता है । स्वर तीव्र हो उठते है । तभी दरवाजा फिर खुलता है । एक सिर दिखाई देता है ।)

राधाकृष्ण —शी शी शी तुम लोग क्या कर रहे हो ?

गुल —(एकदम) ओह कोई बात नहीं । हम जा रहे है । जब चारो तरफ आग बरसती हो तो खून में जोश आ ही जाता है । अच्छा सोमनाथ, तुम जा सकते हो । और तुम भी सादिक । याद रखना हिम्मत न टूटने पावे । फौज आने वाली है ।

सोमनाथ —तुम यकीन रखो । यह हमारी आजादी की लडाई है, गुल । इमे फौजे नही लडेगी, हम लडेंगे ।

सादिक़ —बेशक हम लडेगे । हम तैयार है । हमारा खून झरनो की तरह मचल-मचल कर वह उठने को आतुर है ।

सोमनाथ —और हमारी जिन्दगियाँ चिनार के लाल अगार पत्तो की तरह मादरे वतन को ढक लेना चाहती है ।

राधाकृष्ण —फिर वही जोश । फिर वही बातें । तुम लोग जाते क्यो नही ?

सादिक —(एकदम) ठीक है राधाकृष्ण । आदाबअर्ज, मैं

चला ।

सोमनाथ —और मैं भी । आदाबअर्ज गुल, आदाबअर्ज राधाकृष्ण ।

(दोनों एकदम मुडते है)

राधाकृष्ण —आदाबअर्ज ।

गुल —आदाबअर्ज सोमनाथ । आदाबअर्ज सादिक ।

(दोनों आगे बढकर बाहर हो जाते है । एक क्षण सन्नाटा रहता है । फिर गुल मुडता है ।)

गुल —अच्छा काका, मैं भी चला ।

राधाकृष्ण —हॉ, तुम्हे भी जाना चाहिए । चॉद छिप चुका है । और गौरी का ध्यान रखना । उसे श्रीनगर पहुँचाना ही होगा; नही तो

गुल —(एकदम) कुछ नही, काका । तुम फिक्र मत करो । मै कुछ-न-कुछ करके लौटूँगा । अच्छा, मैं जा रहा हूँ, होशियार रहना । डरना मत । जल्दी वापस आऊँगा ।

राधाकृष्ण —अच्छा । देखकर जाना और गौरी का ध्यान रखना ।

गुल —जरूर, जरूर ।

(गुल जाता है । शब्द दूर होकर मिटते हैं । राधाकृष्ण कुछ क्षण उस ओर देखता रहता है जिधर गुल गया है । उसी बीच मे खिडकी धीरे-धीरे खुलती है । एक कुमारी का सिर धीरे-धीरे सामने आता है । प्रकाश इतना धुंधला है कि स्पष्ट कुछ नहीं दिखाई देता । पर वह एक कुमारी का मुख है, उस कुमारी का जो भयातुर है । वह जैसे ही आगे झुकना चाहती है, वैसे 'खट' ऐसा शब्द होता है । राधाकृष्ण चौंकता है ।)

राधाकृष्ण —कौन ?

गौरी —(भयातुर) कोई नही ।

राधाकृष्ण —गौरी !

गौरी —काका ।

राधाकृष्ण —(अन्दर जाता हुआ द्वार बन्द करता है और खिडकी के पास आता है) तुम क्यो आ गई ?

गौरी —वैसे ही देख रही थी, काका । वे लोग गए ।

राधाकृष्ण —हॉ बेटी, वे गए । हम भी अब जाने वाले है ।

गौरी —हॉ, काका । चलो, बडा डर लगता है ।

(सहसा कही शोर उठता है ! गोली चलती है ! वे दोनो कापते है !)

राधाकृष्ण —यह क्या ? फिर गोली चली ! चलो, चलो, गौरी ।

गौरी —(भयातुर) काका ।

(गौरी एकदम राधाकृष्ण से चिपट जाती है। वह शीघ्रता से उसे थामता है और खिड़की बन्द करता है। शोर पास आता है और स्पष्ट होता है। वही गदी गालिया, बीभत्स हँसी। कुछ ही क्षण मे कई कबायली वर्दिया पहने और हथियारो से लैस स्टेज पर प्रवेश करते है। उनकी चाल बताती है कि वे नशे मे चूर है। उन्होने घास के जूते पहिने है। वे शब्द नही करते, पर उनका अपना स्वर उसकी पूर्ति के लिए काफी है। उन्होने बन्दूके सम्भाली है। वे बेतहाशा पागलो की तरह हँसते हैं और गाली देते है।)

पहला कबायली —(अट्टहास)—खो, वहॉ तो कोई नई मिला। साला काफिर हमको फिर धोका दिया। कहा है वह ? हम उसको अबी जान से मार डालेगा।

(बन्दूक तानता है)

दूसरा कबायली —(और भी जोर से)—ओय, ओय, ओय, उधर क्या है ? उधर जला हुआ मकान है ।

पहला —(उसी तरह) वही, वही, हम उसी को मारेगा। उसने धोका दिया, औरत नही दिया। खो, तुमने इधर औरत देखा है। कम्बख्त ये काफिर लोग कहा से रुपया लाता है ? कहाँ से औरत पैदा करता है ?

दूसरा —मालूम होता है काफिर लोग खुदा के मुशी को रिश्वत देता है।

पहला —क्या ? तुमने क्या बोला। खुदा को रिश्वत ! खुदा को रिश्वत नेई, नई, तुम झूठ बोलता है। खुदा रिश्वत नेई माग सकता। तुम-बी काफिर है, साला काफिर। हम तुमको बी मारेगा, अबी मारेगा।

(बन्दूक तानता है। तीसरा कबायली प्रवेश करता है।)

तीसरा —किसको मारेगा? कौन है इधर? तुम लोग इधर क्या कर रहा है ? उधर क्यो नही जाता ? (हँसकर) एक मौलवी ने कुरान मे सौ-सौ का नोट छिपाया है।

पहला —सौ-सौ का नोट! क्या नोट औरत होता है? खूबसूरत औरत (अट्टहास)।

दूसरा —खूबसूरत औरत !! खूबसूरत औरत कहाँ है ? हम औरत माँगता है।

तीसरा —तुमको औरत मिलेगा, तीन औरत, मौलवी के घर में तीन परीजादियाँ है (हँसकर) तीन परीजादियाँ। खो, हम वी तीन। वो वी तीन।

दूसरा —(नाचता हुआ)। हम-वी तीन, वो वी तीन, ओ ओ ओ हम-वी तीन, वो वी तीन।

पहला —वो-बी तीन. तीन तीन औरत तीन खूबसूरत औरत ।

तीसरा —(उसी मस्ती मे)—ऐ ऐ नाचता है ! चलता क्यो नही ? बहोत खूबसूरत औरत है। बहोत खूबसूरत ! हा, हा, हा, तीन खूबसूरत औरत और तीन सौ-सौ का नोट । यहा न औरत है न दौलत। चलो-चलो। उधर सब कुछ है। (नाटकीय ढग से) जर है, जन्नत की हूर है, तीन सौ-सौ का नोट, तीन खूबसूरत परीजादियाँ ! (हँसता है) ।

पहला —(अट्टहास) चलो, चलो, उधर ही चलो। (जाता है) ।

दूसरा —हाँ, हाँ, जन्नत मे चलो। वहा हूर है, हूर...(जाता है) ।

(तीनो नाचते-गाते जाते है। पहिला फिर लौटता है और बन्दूक उठाकर मकान को लक्ष्य कर के गोली दाग देता है। गहरा स्वर उठता है। फिर डूबने लगता है। कुछ क्षण गूज उठती रहती है, फिर सन्नाटा छा जाता है। कई क्षण बाद खिडकी फिर खुलने लगती है। राधाकृष्ण का सिर उभरता है। उसकी गति बताती है कि वह चौकन्ना है। उसके साथ गौरी का सिर भी सामने आता है। तनिक-सी आहट पर वह पीछे हट जाता है। वह डरी हुई हिरनी की भाति चौकन्नी है। दोनो धीरे-धीरे बाते करने लगते है।)

गौरी —काका ।

राधाकृष्ण —हाँ ।

गौरी —गए ?

राधाकृष्ण —हाँ, गए मालूम होते है ।

गौरी	—फिर तो नहीं आयेंगे ?
राधाकृष्ण	—क्या पता, बेटी। शहर पर इन्हीं का कब्जा है। जब चाहें आ सकते हैं।
गौरी	—पर काका, गुल भइया तो कहते थे कि वे शायद आज रात इधर नहीं आयेंगे।
राधाकृष्ण	—कहता तो था। उसने कोशिश भी की थी और मुझे तो ऐसा लगता है कि यह जो तीसरा कबायली आया था यह कोई गुल का भेजा हुआ भेदिया था।
गौरी	—भेदिया क्या, काका ?
राधाकृष्ण	—कोई अपना आदमी कबायली का वेश बनाकर धोखे से उन्हें कहीं और ले गया है।
गौरी	—सच ?
राधाकृष्ण	—लगता तो ऐसा ही है।
गौरी	—पर काका, ये लोग ऐसे क्यों हैं ! क्यों आग लगाते हैं ? क्यों लूटते हैं ? क्यों मारते हैं ?
राधाकृष्ण	—ये राक्षस हैं, बेटी। इनका स्वभाव ही ऐसा है।
गौरी	—ये राक्षस हैं ? नहीं काका। ये तो आदमी हैं। इन्हें देखकर डर तो लगता है, पर हैं तो आदमी ही।
राधाकृष्ण	—डर लगता है, तभी उन्हें राक्षस कहते हैं, बेटी।
गौरी	—डर तो बहुत लगता है, काका। (रुककर) काका ! मुझे माँ के पास कब ले चलोगे ?
राधाकृष्ण	—(अपने आप से)—काश कि बेटी तू भी अपनी माँ के साथ श्रीनगर चली जाती।
गौरी	—क्यों काका ! बोलते क्यों नहीं ? कब चलोगे ?
राधाकृष्ण	—कब चलोगे ? बस चल ही रहे हैं। गुल इसी बात का इन्तजाम करने गया है। आज हम यहाँ से [illegible] जाना है। [illegible]

गौरी —सच काका ! तब तो बडा अच्छा रहेगा। रास्ते में कुछ गडबड तो नही है ?

राधाकृष्ण —नही बेटी। आगे सब ठीक है। श्रीनगर से हमारी फौजें चल पडी है।

गौरी —तो श्रीनगर चलेंगे। ओह, यहाँ तो बडा डर लगता है। वहाँ मा होगी, दादी होगी, भइया होगे। कैसा अच्छा ? क्यो काका, गुल भइया कब आवेंगे ?

राधाकृष्ण —(खोया-खोया-सा) बस आने ही वाला होगा।

गौरी —काका, गुल भइया बहुत अच्छे है।

राधाकृष्ण —(उसी प्रकार) अच्छा, वह फरिश्ता है, फरिश्ता। वह हमारा सहारा है। हमारे जैसे हजारो बदनसीबो का सहारा है। भगवान ! तुम उसकी रक्षा करना। कही उसे कुछ न हो कही उसे कुछ न हो। नही तो नहीं तो

(राधाकृष्ण भावावेष में खोने लगते है। गौरी उन्हे देखती है।)

गौरी —(एकदम) काका।

राधाकृष्ण —(चौंक कर) हाँ बेटी।

गौरी —काका तुम चुप क्यो हो जाते हो ? मुझे डर लगता है। देखो चाँद भी छिप गया। बाहर कैसा अँधेरा है ? मुझे यहा से ले चलो।

राधाकृष्ण —बस, अब चलेंगे। आओ अन्दर बैठें। यहा कोई आ सकता है। आओ

(राधाकृष्ण गौरी को ऐसे पकड़ते हैं जैसे अपने में समेट लेंगे और अन्दर की ओर मुड़ना चाहते हैं।)

गौरी —क्यो काका, गुल भइया भी चलेंगे ?

राधाकृष्ण —वह कैसे जा सकता है ? यह उसका मकान है।

वह यहा नहीं रहा तो.

(कहते-कहते वे खिड़की बन्द करना चाहते हैं कि बाहिर खटका होता है, वे चौकते हैं)

राधाकृष्ण —कौन ?

(गुल स्टेज पर प्रवेश करता है। उसके पास एक छोटी-सी गठरी है।)

गुल —मैं था, काका।

राधाकृष्ण —(खुशी से) तुम आ गये गुल।

(खिड़की से हटकर किवाड़ खोलता है, गुल अन्दर आता है, दोनों गिर्दी पर आते हैं। गौरी गुल के पास आती है। वह बहुत प्रसन्न है।)

गौरी —तुम आ गये, भइया ! कब चलोगे ?

(गुल कुछ अनमना-सा है। मुस्कराना चाह कर भी मुख पर प्रसन्नता नहीं आ पाती।)

गुल —बस, अभी कुछ देर में चलेंगे !

राधाकृष्ण —गौरी ! देखो तो बेटी समावार में पानी है ?

गौरी —हा, है। चाय पियोगे ?

राधाकृष्ण —हा, गुल को चाय की जरूरत है।

गौरी —अभी बनाती हू।

(गौरी जाती है। राधाकृष्ण गुल को देखता है।)

राधाकृष्ण —क्या खबर है ?

गुल —खबर खराब है।

राधाकृष्ण —(चिंता) खराब ?

गुल —हा काका। खबर बहुत खराब है। उन लोगो ने गाव के गाँव तबाह कर दिये हैं। वे बेगुनाह इसानो की जिंदगी पर मौत बरसा रहे हैं। उनके नापाक इरादे औरतो की अस्मत को बरबाद कर रहे है।

वे जमीन नही चाहते ।

राधाकृष्ण —वे जमीन नही चाहते, ज़र चाहते है ? और ..जाने दो । वह सब तो मै भी जानता हूं । पर सवाल यह है कि क्या किसी तरह गौरी को यहाँ से निकाला जा सकता है ? उसे डर लगता है ।

गुल —उसे डर लगता है ? उसका डरना ठीक है । हैवान से आदमी नहीं डरता; लेकिन जब इन्सान हैवान बन जाता है तो उससे बस डरा ही जाता है ।

राधाकृष्ण —ठीक है गुल । पर गौरी के जाने के बारे में कुछ हुआ क्या ?

गुल —हा, काका ।

राधाकृष्ण —(एकदम प्रसन्न) सच ?

गुल —सच काका । दुनिया की कोई भी ताकत उसे यहा से जाने से नही रोक सकती ।

राधाकृष्ण —(कुछ चौंकता तो है पर प्रसन्न होकर कहता है) . गुल, तुम बहोत अच्छे हो । तुम्हारी वजह से गौरी अबतक बची रही है, नही तो ..

गुल —(हंसकर) ठीक है, काका । उस बात की चर्चा क्यो करते हो पर (एकदम फिर खोया-सा हो जाता है) कैसी दुनिया है यह ? कैसा निजाम है उसका ? (हसता है)

राधाकृष्ण —गुल !

गुल —काका !

राधाकृष्ण —हालत कुछ बहुत खराब है ? क्या हमारी फौजें नहीं आई ?

गुल —आने वाली है ।

राधाकृष्ण —तो क्या वे लोग कुछ कर रहे है ?

गुल —कुछ नही, काका। उनका कोई डर नहीं है। वे इस वक्त भी आ जाय, तो गौरी उन्हे नही मिल सकती।

राधाकृष्ण —(चकित-सा) क्या मतलव ? तुम करना क्या चाहते हो ?

गुल —(मु ह पर उँगली रखता है) आहिस्ता। आहिस्ता बोलो, काका। दीवारे टूट चुकी है। हवा से अव कोई परदा नही है।

राधाकृष्ण —(धीरे से) ठीक है। मुझे बताओ, मै क्या करू ?

गुल —(पोटली देता है) लो, यह लो। इसमें सिलवार, कुल्ला, कुरता और जूते है।

(राधाकृष्ण एकदम पोटली खोलता है और एक-एक चीज को देखता है।)

राधाकृष्ण —(प्रसन्न होकर) ओ हो ! ये सब तो उन जैसे है। खूब ! इन्हे पहन कर मै बिल्कुल कबायली लगूगा। बिल्कुल।

गुल —और उन जैसे बनकर उनकी हद से बाहिर हो जाओगे।

राधाकृष्ण —हॉ, मै तो हो जाऊगा, लेकिन गौरी कैसे करेगी ?

गुल —गौरी के लिए भी मै सब सामान ले आया हूँ।

राधाकृष्ण —क्या लाए हो ? देखूँ, कहा है ?

(गुल जेब से एक शीशी निकाल कर आगे बढाता है)

गुल —यह है।

राधाकृष्ण —(चौककर) यह क्या यह तो शीशी है। (हसकर) इसमें क्या जादू की दवा है ?

गुल —(गम्भीर स्वर मे) हा काका, इसमें जादू की दवा

है। इसे पीकर आदमी ऐसा गायब होता है कि लाख कोशिश करने पर भी उसे कोई नही पा सकता।

राधाकृष्ण —(ठगा-सा) सच ?

गुल —(बरबस हसकर) लो देखो ! तुम तो पढना जानते हो।

राधाकृष्ण —(शीशी को रोशनी के पास ले जाता है, पढकर काप उठता है) क्या, क्या यह तो यह तो ज़हर है। क्या तुम गौरी को जहर देना चाहते हो ?

गुल —(ढीला स्वर) काका !

राधाकृष्ण —(भयातुर) गुल ! गौरी को जहर देना होगा—गौरी को जहर

गुल —काका ! और कोई रास्ता नही, कोई रास्ता नही। होता तो काका, मै काश कि मै अपनी जान देकर भी गौरी को बचा पाता !

राधाकृष्ण —(रुँधा हुआ स्वर) गौरी को जहर गौरी को जहर, नही नही .

गुल— (उसी तरह) .काका, मै उसे नही बचा सकता; लेकिन उसे बेइज्जत होते भी नहीं देख सकता। इज्जत जिन्दगी से बहुत कीमती होती है, काका ! बहुत कीमती।

राधाकृष्ण —(रोता है) लेकिन गुल गुल

गुल —रोते हो, काका ! तुम्हारा रोना ठीक है, औलाद की मोहब्बत रुलाती है, लेकिन काका ! अब तुम रोते हो, पर जब तुम अपनी औलाद की इज्जत अपनी आँखो के सामने इन खूखार वहशी डाकुओ के हाथो लुटते देखोगे तब क्या करोगे ?

(गुल को जोश आता है। उसका धीमा पर आवेश-पूर्ण स्वर गहरी गूंज पैदा करता है। राधा-कृष्ण फूट-फूट कर रोता रहता है। बोलता नहीं। सहसा गौरी के आने का स्वर उठता है। दोनों चौंकते हैं।)

गुल —काका ! गौरी आ रही है। उसे अपने आँसू मत दिखाओ।

राधाकृष्ण —गुल .गुल ! (राधाकृष्ण एकदम सीधा होकर आंसू पोंछता है। गौरी पास आती है।)

गुल —गौरी ! तुम बहुत अच्छी हो। मुझे इस वक्त चाय की बड़ी जरूरत थी। बहुत थक रहा हूं।

गौरी —तो लो, चाय पियो। बहुत है।

गुल —काका के लिए भी है ?

गौरी —हां।

गुल —और गौरी के लिए भी !

गौरी —(हंसकर) मैं तो पी चुकी।

गुल —तो क्या हुआ ! अब हमारे साथ पियो। मैं तुम्हारे लिए बाकरखानी लाया हूँ।

गौरी —(बालोचित सरलता से) कहाँ है ?

(जेब में से निकालता है)

गुल —लो यह एक ही मिली है, तुम खालो।

गौरी —और तुम ?

गुल —मैं तो खा चुका।

गौरी —काका नहीं खायेंगे ? (राधाकृष्ण से) काका आधी तुम लो।

राधाकृष्ण —(बहुत सम्हल कर बोलता है पर स्वर भराया हुआ है।) तुम्हीं खाओ, बेटी। मेरे पेट में दर्द है।

गौरी —नही, काका तुम भी लो । पेट का दर्द ठीक हो जायगा । हमें चलना भी तो है । कैसी अंधेरी रात है ? चाद भी तो छिप गया ।

गुल —अच्छा हुआ जो छिप गया । वह हमारी मुसीबत को जानता है । अधेरे में हमें कोई नही देखेगा ।

गौरी —पर मुझे तो डर लगता है ।

गुल —डर की दवा तुम्हारे काका के पास है ।

गौरी —सच ? डर की भी कोई दवा होती है ।

गुल —हा, होती है । पर तुम पहले चाय तो दो ।

गौरी —ओ हो, वह तो मै भूल ही गई थी ।

(प्याले मे चाय उँडेलती है । प्याले फूटे है)

गौरी —प्याले भी तो फोड़ गए ।

गुल —उन्हे फोडना ही आता है । वे जोडना नही जानते ।

गौरी —(प्याला देती हुई) ऐसा कबतक रहेगा भइया ?

गुल —(घूट भरता हुआ) बस, अब सवेरा हुआ ही चाहता है । सुना है हमारी फौजें चल पडी है । इधर हम लोग भी तैयार है ।

गौरी —(राधाकृष्ण को प्याला देती हुई) लो काका । (गुल की ओर मुड़कर) तुम भी लडोगे ।

गुल —अब तो सबको लडना होगा ।

गौरी —पर मुझे तो डर लगता है ।

गुल —(हंसकर) तुम अभी छोटी हो । पर तुम्हारे डर की दवा मै ले आया हू ।

गौरी —(हंसकर) ओ हो ! वह तो मै भूल ही गई थी । काका, दो न, कौनसी दवा है !

राधाकृष्ण —(काप उठता है । प्याला हाथ से छूट जाता है) क्या

गौरी —(एकदम) काका, तुम्हारी चाय बिखर गई।

राधाकृष्ण —(रुधा स्वर) बिखर जाने दो। मेरे पेट में दर्द कुछ तेज हो रहा है, गौरी। ओह ओह. .

(राधाकृष्ण का मुह बुरी तरह विकृत हो जाता है। आँखो मे आसू भर आते है। गौरी पास आकर हाथ पकडती है।)

गुल —(गभीर अर्थ-भरा स्वर) काका! पेट के दर्द को ठीक कर लो। हमें अभी चलना है, देर हो गई तो वे लोग आ सकते है। इस बार उन्हें धोखा नही दिया जा सकता।

राधाकृष्ण —(सभलता हुआ) ठीक है। मै ठीक हूं, गुल। मै चलूँगा। अभी चलूँगा।

गुल —तो गौरी को उसकी दवा दे दो।

राधाकृष्ण —गुल...अभी देता हू। चाय पी लूँ। बेटी, चाय और है?

गौरी —है काका?

राधाकृष्ण —तो दो न। बाकरखानी भी दो।

गौरी —(चाय उडेलती है, बाकरखानी देती है।) लो काका। और मुझे दवा दो।

राधाकृष्ण —अभी देता हूँ। (बाकरखानी का टुकड़ा गौरी के मुह मे देता है।) लो खाओ।

गौरी —(भरा मुह)—काका, मै तो खा ही रही थी।

गुल —पर काका के हाथ से कहा खाया था। (हसता है।)

गौरी —(हसती है) अच्छा काका। दवा तो दो। फिर चलें।

गुल —हा, दो काका। गौरी को चलने का बडा चाव है। ठीक भी है, बेचारी अपनी मा से मिलेगी।

गौरी —और दादी से, भइया से।

गुल —हाँ सबसे मिलना। काका अब दवा दे दो, जल्दी करो।

राधाकृष्ण —(शीघ्रता से) लो गुल तुम दे दो। मैं तनिक अन्दर देखलूँ।

(शीशी देता है। हाथ कापता है।)

गुल —(शीशी लेकर)—हा, काका तुम जरूरी सामान बटोर लो। लो गौरी, यह दवा आख मीच कर पी लो।

(राधाकृष्ण लड़खड़ाता है पर रुकता नहीं। गौरी दवा की शीशी हाथ मे लेती है।)

गौरी —आख मीचने की क्या जरूरत है। क्या कडवी है।

गुल —नहीं।

गौरी —तो लो मैं ऐसे ही पी जाती हू। (शीशी खोलकर मु ह से लगाती है।) देखो।

(दवा मु ह में जाती है। चेहरा विकृत होता है। देखते-देखते गौरी छटपटाने लगती है और पीछे को गिर पड़ती है। मु ह से अस्फुट स्वर निकलता है) का .

(गुल एकदम पुकारता है)

गुल —गौरी. .

(राधाकृष्ण दौड़े आते है)

राधाकृष्ण —(रोते हुए) गौरी गौरी . इ-ही ही ही।

(फूट-फूट कर रोता है)

गुल —(रु धा स्वर) काका काका . तसल्ली .

राधाकृष्ण —(चीत्कार करता हुआ) गौरी . गौरी मेरी बेटी। गौरी, तू तो अभी बोल रही थी बेटी। तू इतनी देर

में कहां चली गई । गुल,

गुल —(गम्भीर स्वर)—वह भगवान के पास चली गई है काका । वहा उसकी खूबसूरती और अस्मत का कोई मोल-तोल करने वाला नही होगा । गौरी खुश-किस्मत थी, काका बहुत खुश-किस्मत...

राधाकृष्ण —(रोता हुआ) गुल...गुल । तुम कुछ नही जानते । मै उसकी माँ को क्या जवाब दूगा ! जब वह पूछेगी, मेरी बेटी को कहाँ छोड़ आये, तो क्या कहूगा ! बताओ क्या कहूंगा ?

गुल —अब कहने की क्या बात है ? कहना तो तब मुश्किल होता जब अस्मत के वे लुटेरे उसे उठा कर ले जाते । तुम्हारी बेटी की जान चली गई, काका लेकिन जान से प्यारी अस्मत नही गई ।

राधाकृष्ण —(कुछ सम्हलकर) गुल, गुल (सुबककर) मै बाप हू, गौरी का बाप ।

गुल —जानता हूँ काका । तुम बहादुर बेटी के बहादुर बाप हो । तुमने अपनी बेटी की अस्मत ही नही बचाई, तुमने दुश्मन की आँखो में धूल झोकी है, लुटेरो के मन्सूबो पर पानी फेरा है, वतन के दुश्मनो से वतन की आबरू को बचाया है ।

राधाकृष्ण —(चकित-सा ऊपर को मु ह उठाता है) गुल गुल . तुम क्या कह रहे हो ?

गुल —ठीक कह रहा हूँ काका ! उठो और वतन पर जान कुर्बान करने वाली बेटी को आग के सुपुर्द करो ।

(कहीं गोली चलती है, शोर उठता है)

राधाकृष्ण —(काप कर) वे फिर आगए गुल ! वे फिर आगए ।

गुल —कोई डर नही, अब कोई डर नही, काका । हम तैयार

है, लो उठो। गौरी को अन्दर ले चलो।

(क्षणिक सन्नाटा, फिर शोर, राधाकृष्ण का कांपना)

गुल —उठो काका ! वे आगए तो

राधाकृष्ण —(उठता हुआ) नहीं, नहीं, गुल। जो इसे जीते जी नहीं छू सके वे मरने पर भी नहीं छू सकेंगे। (कण्ठ रुक जाता है।) कभी नहीं छू सकेंगे।

गुल —तुम, बहादुर हो काका। बहादुर बेटी के बहादुर बाप।

(दोनो गौरी को उठा ले जाते हैं। शोर पास आता जाता है। खिडकी-द्वार दोनो बन्द होते है। गोलियो का शोर उठता है। फिर गोली चलने लगती है। चलती रहती है। परदा गिर जाता है। गिरते-गिरते कवायलियो के पैर स्टेज पर दिखाई देने लगते हैं।)

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

आपका जन्म १६ जुलाई १६१७ को हुआ। आपका रचना काल सन् १६२६ से प्रारम्भ होता है। आपके प्रथम एकांकी 'मेरी बांसुरी' का सन् १६३६ मे म्योर होस्टल मे अभिनय एवं 'सरस्वती' मे प्रकाशन हुआ। आपने सन् १६३७ से १६४३ के बीच कई एकाकी नाटक लिखे और उनका अभिनय कराया। इनमे से पाच का सग्रह 'भोर का तारा' सन् १६४६ मे प्रकाशित हुआ जो आपको सफल एकाकी नाटककारो की प्रथम कोटि मे स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त आपका पूरा नाटक 'कोणार्क' प्रकाशित हो चुका है। 'कुवरसिह' और 'पाच नटखट नाटक' भी लगभग तैयार है। आजकल आप लोक-रगमच के लिए कुछ सामग्री तैयार करने मे संलग्न है और कुछ घुमतू नाट्य मडलियो की स्थापना भी कर चुके है।

आपने सन् १६४४ मे विहार के सुप्रसिद्ध सास्कृतिक पर्व वैशाली महोत्सव का बीजारोपण किया। उसी सबध मे सन् १६४७ मे वैशाली अभिनन्दन-ग्रथ नामक विद्वत्तापूर्ण सग्रह ग्रथ का सपादन भी किया।

सरकारी जीवन मे आप इण्डियन सिविल सर्विस के अधिकारी हैं और १६४६ ई० से विहार राज्य के शिक्षा सचिव के पद पर काम कर रहे है।

आपकी कला मे कवित्व और यथार्थ दोनो का समावेश है और इसलिए उसका आदर्श पकड से बाहर नहीं है। आप मानव-आत्मा के शिल्पी है। आपकी शैली सरस, भाषा मजी हुई, मधुर और साधारण बोल-चाल की है।

रीढ़ की हड्डी

●

पात्र-परिचय

उमा	:	लड़की
रामस्वरूप	:	लडकी का पिता
प्रेमा	.	लडकी की माँ
शंकर	:	लडका
गोपालप्रसाद	:	लडके का बाप
रतन	:	नौकर

(मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है वह अधेड़ उम्र के मालूम होते है, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे मे आते है। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।)

बाबू —अबे धीरे-धीरे चल। अब तख्त को उधर मोड दे .उधर। बस, बस।

नौकर —बिछा दूँ साहब ?

बाबू —(जरा तेज आवाज़ मे) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ? बिछा दूं सा'ब ! और यह पसीना किस लिए बहाया है ?

नौकर —(तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू —हँसता क्यो है ? . अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की है। कलसो से नहाता था लोटो की तरह। यह तख्त क्या चीज है ? उसे सीधा कर यो हा बस। और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच मे मेज़पोश ठीक करते है। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते है। कुर्सियो पर भी दो चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है। गदुमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज से जाहिर होता

है कि किसी काम मे बहुत व्यस्त है । उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू साहब—रामस्वरूप—दोनो की तरफ देखने लगते है ..)

प्रेमा —मै कहती हूँ तुम्हे इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड गई ! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में

रामस्वरूप —धोती ?

प्रेमा —हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किस लिए

रामस्वरूप —लेकिन तुमसे धोती मॉगी किसने ?

प्रेमा —यही तो कह रहा था रतन ।

रामस्वरूप —क्यो बे रतन, तेरे कानो मे डाट लगी है क्या ? मैने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे मॉग ला अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहा से लाऊँ। उल्लू कही का ।

प्रेमा —अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी मे लकडी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपडे रक्खे है न ? उन्ही मे से एक चद्दर उठा ला ।

रतन —और दरी ?

प्रेमा —दरी यही तो रक्खी है, कोने मे । वह पडी तो है ।

रामस्वरूप —(दरी उठाते हुए) और बीबीजी के कमरे में से हार-मोनियम उठा ला, और सितार भी । जल्दी जा । (रतन जाता है । पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते है)

प्रेमा —लेकिन वह तुम्हारी लाडली बेटी तो मुँह फुलाये पडी है ।

रामस्वरूप —मुँह फुलाये । और तुम उसकी, मॉ किस मर्ज की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड मे आये

है । अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा —तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गई । तुम्हीने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढा रक्खा है । मेरी समझ में तो यह पढाई-लिखाई के जजाल आते नही । अपना जमाना अच्छा था ! 'आ ई' पढ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ ली । सच पूछो तो स्त्री-सुबोधिनी में ऐसी-ऐसी बातें लिखी है—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढाई होगी । और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे है—

रामस्वरूप —ग्रामोफोन बाजा होता है न !

प्रेमा —क्यो

रामस्वरूप —दो तरह का होता है । एक तो आदमी का बनाया हुआ । उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो । और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ । उसका रिकार्ड एक बार चढा तो रुकने का नाम नही ।

प्रेमा —हटो भी । तुम्हे ठठोली ही सूझती रहती है । यह तो होता नही कि उस अपनी उमा को राह पर लाते । अब देर ही कितनी रही है उन लोगो के आने में ।

रामस्वरूप —तो हुआ क्या ?

प्रेमा —तुम्हीने तो कहा था कि जरा ठीक-ठीक करके नीचे लाना । आजकल तो लडकी कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रक्खा था । पर उसे तो इन चीजो से न जाने किस जन्म की नफरत है । मेरा कहना था कि आँचल में मुह लपेटकर लेट

गई । भई, मैं तो बाज आई तुम्हारी इस लडकी से ।

रामस्वरूप —न जाने कैसा इसका दिमाग है । वरना आजकल की लडकियो के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है ।

प्रेमा —अरे मैंने तो पहले ही कहा था । इंट्रेंस ही पास करा देते—लडकी अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पडती ! पर तुम तो—

रामस्वरूप —(बात काट कर) चुप, चुप ।...(दरवाजे मे झाकते हुए) तुम्हे कतई अपनी जबान पर काबू नही है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगो के सामने जिक्र और ढँग से होगा । मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी ?

प्रेमा —अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी । जैसी तुम्हारी मर्जी हो करना । बस मुझे तो मेरा काम बता दो ।

रामस्वरूप —तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो । न सही पौडर । वैसे कौन बुरी है । पान लेकर भेज देना उसे । और नाश्ता तो तैयार है न ? (रतन का आना) आ गया रतन ? इधर ला, इधर । बाजा नीचे रख दे । चद्दर खोल । पकडा तो जरा इधर से ।

(चद्दर बिछाते है)

प्रेमा —नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायँगे नही । कुछ नमकीन चीजें बना दी है । फल रक्खे है ही । चाय तैयार है, और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन, ? मक्खन तो आया ही नही ।

रामस्वरूप —क्या कहा ? मक्खन नही आया ? तुम्हे भी किस वक्त याद आई है । जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हे तो ठीक वक्त पर कोई बात

सूझती ही नही। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरो के मारे . . .

प्रेमा —यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में 'ट्रे' में रक्खा हुआ है, सो तुम्हे पकडा दूँगी। एकाध चीज़ खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयगा।—दो आदमी ही तो है ?

रामस्वरूप —हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लडका है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आये। ये लोग ज़रा ऐसे ही है। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालो पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील है, सभा-सोसाइटियो में जाते है, मगर लडकी चाहते है ऐसी कि ज्यादा पढी-लिखी न हो।

प्रेमा —और लडका ?

रामस्वरूप —बताया तो था तुम्हे। बाप सेर है तो लडका सवा सेर। बी० एस० सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढता है मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लडको और इनके बापो को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी .

रतन —(जो अब तक दरवाजे के पास चुपचाप खडा हुआ था, जल्दी जल्दी) बाबूजी, बाबूजी।

रामस्वरूप —क्या है ?

रतन —कोई आते है।

रामस्वरूप —(दरवाजे से बाहर झांककर जल्दी मुंह अन्दर करते हुए) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पड़ते ही) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने? सब चौपट कर दिया। अबे, उधर से नहीं, अंदर के दरवाजे से जा (नौकर अन्दर आता है) और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रक्खे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा —उँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

रामस्वरूप —तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ।...जल्दी।

(प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।)

रामस्वरूप —हँ-हँ-हँ। आइए, आइए।...हँ-हँ-हँ।

(बाबू गोपालप्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरनेवाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

रामस्वरूप —(अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए इधर...।

(बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।)

रामस्वरूप —यह बेंत! लाइए मुझे दीजिए। (कोने में रख

देते हैं। सब बैठते हैं।) हँ हँ मकान ढूँढने में कुछ तकलीफ तो नही हुई ?

गोपालप्रसाद —(खखारकर) नही। ताँगेवाला जानता था। ..और फिर हमे तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नही ?

रामस्वरूप —हँ हँ हँ। यह तो आपकी बडी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी—

गोपालप्रसाद —अरे नही साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लडके की शादी तो करनी ही है। बल्कि यो कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप —हँ-हँ-हँ? यह लीजिए, आप तो मुझे काँटो में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ हँ—सेवक ही है। हँ हँ! (थोडी देर बाद लडके की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शकर बाबू कितने दिनो की और छुट्टियाँ है ?

शकर —जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नही है। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप —तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल भर रहा होगा ?

शंकर —जी, यही कोई साल दो साल।

रामस्वरूप —साल दो साल ?

शंकर —हँ हँ हँ! . जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ .

गोपालप्रसाद —बात यह है साहब कि यह शकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगो को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती है। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनो कचौडियाँ उडा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख।

रामस्वरूप —कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गोपालप्रसाद —जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी। और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वौली बाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हाकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीसे निपोरते हैं।)

रामस्वरूप —जी हाँ, जी हाँ! उस जमाने की बात ही दूसरी थी। हँ हँ!

गोपालप्रसाद —(जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंगेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप —जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गोपालप्रसाद —माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है!

रामस्वरूप —हँ-हँ-हँ!.. जी हाँ वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना! हँ-हँ-हँ

(शंकर भी ही-ही करता है।)

गोपालप्रसाद —(एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब फिर 'बिजनेस' की बातचीत हो जाय।

रामस्वरूप —(चौंककर) बिजनेस —बिजि ..(समझ कर)
ओह ..अच्छा, अच्छा । लेकिन जरा नाश्ता तो कर
लीजिए ।

(उठते हैं ।)

गोपालप्रसाद —यह सब आप क्या तकल्लुफ करते हैं ?

रामस्वरूप —हैं हैं हैं ! तकल्लुफ किस बात का । हैं—हैं !
यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ
तशरीफ लाये । वरना मैं किस काबिल हूँ । हैं—हैं !
. माफ कीजिएगा जरा । अभी हाजिर हुआ ।

(अन्दर जाते हैं ।)

गोपालप्रसाद —(थोडी देर बाद दबी आवाज मे) आदमी तो भला है,
मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नही मालूम होती ।
पता चले, लड़की कैसी है ।

शंकर —जी .

(कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।)

गोपालप्रसाद —क्यो, क्या हुआ ।

शंकर —कुछ नही ।

गोपालप्रसाद —झुककर क्यो बैठते हो ब्याह तय करने आये हो,
कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक कहते
है कि शंकर की 'बैक बोन'. .

(इतने में बाबू रामस्वरूप आते है, हाथ मे चाय
की ट्रे लिये हुए । मेज पर रख देते हैं ।)

गोपालप्रसाद —आखिर आप माने नहीं !

रामस्वरूप —(चाय प्याले में डालते हुए) हैं हैं हैं ! आपको
विलायती चाय पसंद है या हिन्दुस्तानी ?

गोपालप्रसाद —नही-नही साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय
दीजिए । और जरा चीनी ज्यादा डालिएगा । मुझे

तो भाई यह नया फैशन पसद नही । एक तो वैसे ही चाय मे पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा ?

रामस्वरूप —हँ-हँ, कहते तो आप सही है ।

(प्याला पकडाते है ।)

शकर —(खखार कर) सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेनेवालो पर 'टैक्स' लगाएगी ।

गोपालप्रसाद —(चाय पीते हुए) हूँ । सरकार जो चाहे सो करले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिये ।

रामस्वरूप —(शकर को प्याला पकडाते हुए) वह क्या ?

गोपालप्रसाद —खूबसूरती पर टैक्स ? (रामस्वरूप और शकर हँस पडते है ।) मजाक नही साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ भी न करेगे । बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टेण्डर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले । फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढती है ।

रामस्वरूप —(जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है । हम लोगो के जमाने मे तो यह कभी उठता भी न था । (तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढाते है ।) लीजिए ।

गोपालप्रसाद —(समोसा उठाते हुए) कभी नही साहब, कभी नही ।

रामस्वरूप —(शकर को मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शङ्कर बाबू ?

शंकर —किस मामले मे ?

रामस्वरूप —यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपालप्रसाद —(बीच मे ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था. लडकी का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे हो। बात यह है कि हम आप मान भी जायँ, मगर घर की औरतें तो राजी नही होती। आपकी लडकी तो ठीक है ?

रामस्वरूप —जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपालप्रसाद —देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप —हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ !

गोपालप्रसाद —और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

रामस्वरूप —जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों मे रख दिया। बस, खुद बखुद मिला हुआ समझिए।

गोपालप्रसाद —यह ठीक कहा है आपने, बिल्कुल ठीक (थोडी देर रुक कर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानो में भनक पडी है, यह तो गलत है न ?

रामस्वरूप —(चौक कर) क्या ?

गोपालप्रसाद —यही पढाई-लिखाई के बारे मे ! जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढी-लिखी लडकी नही चाहिए। मेम साहब तो रखनी नही, कौन भुगतेगा उन के नखरो को। बस हद से हद मैट्रिक होनी चाहिए . क्यो शंकर ?

शंकर —जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नही।

रामस्वरूप —नौकरी का तो कोई सवाल ही नही उठता।

[उमा सितार उठाती है। थोडी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से जाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर मे तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखे शकर की झेपती-सी आँखो से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।]

रामस्वरूप —क्यो, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा।

गोपालप्रसाद —नही-नही साहब, काफी है। लडकी आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रख कर अन्दर जाने को उठती है।)

गोपालप्रसाद —अभी ठहरो, बेटी।

रामस्वरूप —थोडा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है।)

गोपालप्रसाद —(उमा से) तो तुमने पेन्टिंग-वेंटिग भी .

उमा —(चुप)

रामस्वरूप —हा, वह तो मै आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टॅगी हुई है, कुत्तेवाली, इसीने खीची है। और वह उस दीवार पर भी।

गोपालप्रसाद —हूँ। यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

रामस्वरूप —सिलाई तो सारे घर की इसीके जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजे भी। हें हें हें।

गोपालप्रसाद —ठीक ! लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते है।

[उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते है। लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते है और रामस्वरूप सकपकाते हैं।]

रामस्वरूप —जवाब दो उमा। (गोपाल से) हँ हँ, जरा शरमाती है। इनाम तो इसने...

गोपालप्रसाद —(जरा रूखी आवाज में) जरा इसे भी मुह तो खोलना चाहिये।

रामस्वरूप —उमा, देखो, आप क्या कह रहे है। जवाब दो न।

उमा —(हल्की लेकिन मजबूत आवाज़ मे) क्या जवाब दूं बाबूजी! जब कुर्सी-मेज बिकती है तब दूकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नही पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आगई तो अच्छा है, वरना ..

रामस्वरूप —(चोक कर खडे हो जाते है) उमा, उमा!

उमा —अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। . ये जो महाशय मेरे खरीदार बन कर आए है, इनसे जरा पूछिये कि क्या लडकियो के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नही लगती? क्या वे बेबस भेड-बकरियाँ है, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भाल कर खरीदते है?

गोपालप्रसाद —(ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिये मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा —(तेज आवाज़ मे) जी हाँ, हमारी बेइज्जती नही होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे है? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिये कि अभी पिछली फरवरी में ये लडकियो के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यो घूम रहे थे, और वहाँ से क्यो भगाये गये थे!

शंकर —बाबूजी, चलिए।

गोपालप्रसाद —लड़कियो के होस्टल में?.. क्या तुम कालेज में पढी हो?

(रामस्वरूप चुप।)

—जी हाँ, मैं कालेज मे पढी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नही किया, कोई चोरी नही की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का खयाल तो है! लेकिन इनसे पूछिये कि ये किस तरह नौकरानी के पैरो पडकर अपना मुह छिपा कर भागे थे !

रामस्वरूप —उमा, उमा !

गोपालप्रसाद —(खडे होकर गुस्से मे) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है, और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढी है। लाइए, मेरी छडी कहाँ है। मै चलता हूँ। (छड़ी ढूँढ कर उठाते है।) बी० ए० पास ? उफ्फोह ! गजब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो .

(दरवाजे की ओर बढते है।)

उमा —जी हाँ, जाइये, जरूर चले जाइये। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइयेगा कि आपके लाडले बेटे के रीढ की हड्डी भी है या नही—यानी बैकबोन, बैकबोन—

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लडके के रुलासापन। दोनो बाहर चले जाते है। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते है। उमा सहसा चुप हो जाती है, लेकिन उसकी हँसी सिसकियों मे तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत मे आना।]

प्रेमा —उमा, उमा रो रही है ?